पार्श्वनाथ विद्याश्रम ग्रन्थमाला
: २४ :

सम्पादक
डॉ० सागरमल जैन

जैन साहित्य
का
बृहद् इतिहास

भाग ७

[कन्नड, तमिल एव मराठी जैन साहित्य]

लेखक
प० के० भुजबली शास्त्री
श्री टी० पी० मीनाक्षी सुन्दरम् पिल्लै
डॉ० विद्याधर जोहरापुरकर
[तमिल विभाग के अनुवादक श्री र० शौरिराजन]

सच्चं लोगम्मि सारभूयं

प्रकाशक
पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान
वाराणसी–५

प्रकाशक :

पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान
वाराणसी-२२१००५

प्रकाशन-वर्ष :

सन् १९८१

मुद्रक :

एजूकेशनल प्रिन्टर्स,
गोला दीनानाथ, वाराणसी-२२१००१

प्रकाशकीय

जैन साहित्य का बृहद् इतिहास भाग ७ को पाठकों के हाथो में प्रस्तुत करते हुए हमे अत्यधिक प्रसन्नता हो रही है। वस्तुत· इसका प्रकाशन एक दशक पूर्व ही हो जाना था, किन्तु कुछ अप्रत्याशित कारणो से इसके प्रकाशन मे विलम्ब होता गया। यह हमारा दुर्भाग्य ही है कि इस जैन साहित्य के बृहद् इतिहास के कन्नड विभाग के लेखक प० के० भुजवली शास्त्री आज इस प्रकाशन को देख पाने के लिए हमारे बीच नही रहे।

इस खण्ड के अन्तर्गत हमने दक्षिण भारतीय भाषाओ मे रचित जैन साहित्य का संक्षिप्त परिचय देने का प्रयास किया है। इसके तीन उपविभाग हैं। जिनमे क्रमश कन्नड, तमिल और मराठी जैन साहित्य की कृतियो और कृतिकारो की सक्षिप्त जानकारी प्रस्तुत की गई है।

तमिल एवं कन्नड जैन साहित्य के सम्बन्ध में यद्यपि अग्रेजी भाषा में कुछ पुस्तकें लिखी गई हैं किन्तु हिन्दी भाषा में अभी तक कोई भी पुस्तक नही लिखी गई है। मात्र यत्र-तत्र कुछ लेख प्रकाशित अवश्य हुए, अत· इस दृष्टि से इस दिशा में यह प्रथम प्रयास है। इस सम्बन्ध में हमें अनेक कठिनाइयो का सामना करना पड़ा है। मूल कठिनाई तो तमिल एवं कन्नड विभाग के लेखको के सम्बन्ध में ही थी। तमिल विभाग को तमिल में लिखवा कर फिर हिन्दी में अनुवाद करवाना पड़ा, किन्तु यह अनुवाद भी तमिल भाषी ने ही किया है। कन्नड विभाग यद्यपि हिन्दी में लिखा गया फिर भी तमिल के अनुवादक एवं कन्नड विभाग के लेखक हिन्दीभाषी नही होने के कारण ग्रन्थों की भाषा में वाक्यविन्यास, विभक्ति आदि की दृष्टि से उनकी मातृभाषाओ का स्पष्ट प्रभाव आ गया है। यद्यपि हमने भाषा को यथासम्भव संशोधित करने का प्रयास किया फिर भी भाषा में अपेक्षित कसावट एवं एकरूपता आना तब तक सभव नही था जब तक कि इसका पुनर्लेखन नही होता। हमारी अपनी कठिनाई यह थी कि हम कन्नड एव तमिल साहित्य भाषा एव उच्चारण शैली से ही अपरिचित थे। लेखको की

भाषा में आमूलचूल परिवर्तन करना भी खतरे से खाली नही था। इसलिए भाषा के संबध में यथास्थिति रखना ही हमें अधिक उचित लगा। कही नाम आदि के संबध में भी मूल लेखको की अपनी विशिष्टताएँ थी, दूसरे कुछ नामो के सबध में हमें तमिल एव कन्नड के लेखको में भी उच्चारणभेद मिले। अत कौन सा सही है, यह निश्चित कर पाना भी कठिन था, ऐसा स्थिति में उन्हे भी यथावत् रखा गया है, जैसे चामुण्डराय के स्थान पर चाउण्डराय। कही तमिल एव कन्नड के लेखको ने ही एकरूपता नही वरती है जैसे वड्डाराधना और वड्डाराधने। इसे भी हमने यथावत् रखा है। यद्यपि ये सब कठिनाइयाँ मराठी विभाग में नही है। हमारी अपेक्षा यही है कि सुधी पाठक हमें त्रुटियो से अवगत करावें ताकि इन्हे भविष्य में सुधारा जा सके।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन मे यदि हमें जीवन जगन चेरिटेबल ट्रस्ट से आर्थिक सहायता नही मिली होती तो सभवतः इसके प्रकाशन में और भी अधिक विलम्ब होता। इस आर्थिक सहयोग के लिए हम उक्त ट्रस्ट के ट्रस्टी मण्डल के अत्यन्त आभारी हैं जिन्होने इस हेतु हमें पाँच हजार रुपये की धनराशि प्रदान की।

हम सस्थान के मंत्री श्री भूपेन्द्रनाथ जी जैन के आभारी हैं जिन्होने इस प्रकाशन के लिए न केवल प्रेरणा दी अपितु समय-समय पर हमारी आवश्यकताओ की पूर्ति भी करते रहे। हम डॉ० हरिहर सिह, श्री जमनालाल जी जैन, शोधछात्र श्री मगल प्रकाश मेहता एव श्री रविशकर मिश्र के भी आभारी हैं जिन्होने ग्रन्थ की भाषा के सम्पादन तथा प्रूफरीडिंग आदि कार्यों में हमारी सहायता की है।

अन्त में हम एजूकेशनल प्रिंटर्स के भी आभारी हैं जिन्होने इसके मुद्रण कार्य को सम्पन्न किया।

—सागरमल जैन
निदेशक

जिन्हें यह ग्रन्थ समर्पित है—
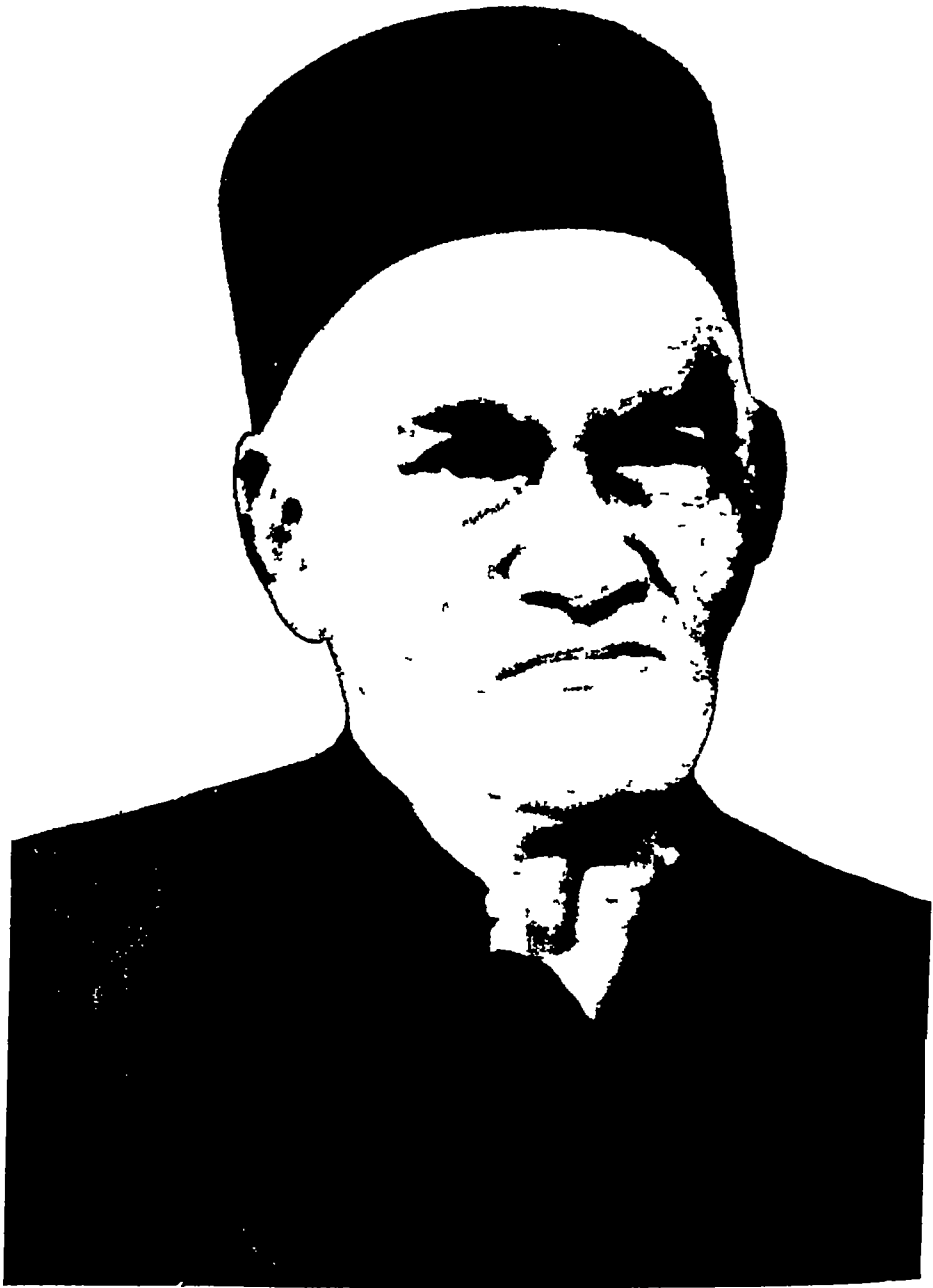
स्व० लाला हंसराजजी जैन, अमृतसर

जन्म ई० सन् १८६८ स्वर्गवास ई० सन् १९७४

लाला हंसराज जैन का जीवन-परिचय

लाला हंसराजजी जैन का जन्म ई० सन् १८९८ मे अमृतसर के एक प्रतिष्ठित एवं सम्पन्न स्थानकवासी ओसवाल परिवार मे हुआ था। आपके पिता लाला जगन्नाथ जैन थे। अपने परिवार में आप तीन भाई थे—लाला रतनचदजी, लाला हसराजजी और लाला हरजसरायजी। लाला रतनचदजी आपके बडे भाई थे। आपने अपने कठोर परिश्रम तथा विचक्षण बुद्धि से पारिवारिक व्यापार को अमृतसर से दिल्ली, बम्बई तथा कलकत्ता तक फैलाया। आप मे एक कुशल व्यवसायी के सभी गुण थे। आप कठोर परिश्रमी एव दृढ़ विचारो के व्यक्ति थे।

निरन्तर व्यापार के श्रमसाध्य कार्य मे लगे रहने के बावजूद आप समाजकल्याण-सम्बन्धी अच्छे कार्यों के लिए समय निकाल ही लेते थे। श्री सोहनलाल जैनधर्म प्रचारक समिति के द्वारा सचालित पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध-सस्थान मे आपकी रुचि प्रारम्भ से रही थी और उदार हृदय से उसके कार्यों मे सहयोग देते थे। आप निरन्तर कर्मशील व्यक्ति थे। जैन समाज में चेतना एव सक्रियता लाने के लिए आप सदैव प्रयत्नशील बने रहते थे। आप एक बार जो दृढ़ निश्चय कर लेते थे, फिर उससे कभी विचलित नही होते थे। सारा समाज आपके विचारो की दृढ़ता, स्पष्टता तथा व्यवहार मे प्रामाणिकता के कारण आपको आदर की दृष्टि से देखता था। आपके एक-मात्र पुत्र का स्वर्गवास सन् १९४७ ई० मे नौ वर्ष की अल्पायु मे हो गया। आप पाँच पुत्रियो तथा एक दत्तक पुत्र का भरा-पूरा परिवार छोडकर १९ अगस्त, १९७४ ई० को स्वर्गवासी हुए।

●

संकेत सूची

M.A R.	Mysore Archaeological Report.
E.I.	Epigraphia Indica.
A.R.E.	Annual Report on South Indian Epigraphy.
S.I.I.	South Indian Inscriptions.
I.M.P.	Inscriptions of Madras Presidency.
E.C.	Epigraphia Carnatica.

विषय-सूची

(स) मराठी जैन साहित्य का इतिहास २०१-२४८

१. कन्नड साहित्य का आरम्भकाल

कन्नड मे साहित्य-निर्माण का कार्य कब से प्रारम्भ हुआ यह कहना कठिन है। कन्नड के शिलालेख ई० सन् छठी सदी से ही मिलते है। इनसे पहले के शिलालेख संस्कृत प्राकृत मे उपलब्ध हुए हैं। ये शिलालेख गद्य मे हैं और आकार मे छोटे है। एक दो ही शिलालेख पद्य मे मिले हैं। ई० सन् ९वी सदी के अर्थात् पपतुग के उत्तरकाल मे कन्नड के शिलालेख गद्य-पद्य की काव्य-शैलियो में उपलब्ध हुए हैं जो कि आकार मे भी बडे है। राष्ट्रकूटनरेश नृपतुग ई० सन् ८१७ से ८७७ तक शासन करते रहे। इनका कविराज-मार्ग ही कन्नड का प्राचीनतम उपलब्ध ग्रंथ है। इस ग्रंथ से विदित होता है कि कन्नड भाषा में मधुरता, कुतल देश के कोपण एव पुलिगेरे की बोली के संपर्क से आयी है। उस समय कन्नड में बेदण्डे, चत्ताण नामक काव्य भेद ही थे और कन्नड मे गद्य-पद्य की शैलियो के रचनाकार भी मौजूद थे। कविराज-मार्ग मे कतिपय कवियो के नाम मिलते हैं और उदाहरण के तौर पर कुछ उद्धरण भी। इससे मालूम होता है कि ई० सन् ९वीं सदी से पूर्व भी कन्नड मे ग्रंथ अवश्य रचे गये थे।

पप, पोन्न, रन्न आदि जैन महाकवि १०वी सदी में हुए हैं। पर इनकी कृतियो से पूर्ववर्ती रचनाओ पर कोई प्रकाश नही पडता। ये किसी पूर्ववर्ती रचनाकार का उल्लेख भी नही करते। केवल पोन्न असग नाम के कवि का उल्लेख करता है। पप ने बडे गर्व से अवश्य कहा है कि मेरी रचनाओं की तुलना मे पूर्ववर्ती काव्य नीरस हैं। उसने आत्मविश्वास के साथ यह भी घोषित किया है कि पूर्व का कोई कवि महाभारत का समीचीन वर्णन करने मे समर्थ नहीं हुआ है। पप प्रणीत विक्रमार्जुनविजय में महाभारत के समस्त उपाख्यान वर्णित हैं, जबकि रन्न-रचित गदायुद्ध एक उपाख्यान पर ही आधारित काव्य है। अत यही अनुमान लगाया जा सकता है कि पप पूर्व-युग मे कन्नड मे महाभारत की कथा पर आधारित कोई उल्लेखनीय काव्य नही था। पर नृपतुग के उद्धरणो से यह निष्कर्ष निकलता है कि आरभिक युग मे कोई राम-काव्य अवश्य रहा होगा।

कन्नड मे ईसा की छठीं शताब्दी से पहले न कोई शिलालेख था, न कोई

रचना थी और न कोई अन्य प्रकार के लेख ही थे। यह कहना कठिन ही है कि नृपतुग की रचनाओ मे जिन कवियो का उल्लेख किया गया है वे इससे पूर्वकाल के थे और उस काल मे अपनी काव्य-रचना किया करते थे। उनकी रचनाएँ प्राय परिमाण अथवा गुण की दृष्टि से ऊँचे स्तर की नही रही होगी। दण्डी के अलङ्कारग्रथ के आधार पर नृपतुग ने कविराजमार्ग लिखा था। इसमे सदेह नही है कि पप की रचनायें परवर्ती कवियो के लिए आदर्श कृतियाँ सिद्ध हुई। अत कन्नड के आदिकवि का सम्मान पंप को प्राप्त है।

भाषा के विकास की दृष्टि से भी यही स्थिति है। कहा जाता है कि द्रविड परिवार से तेलुगु पहले ही अलग हो गई। तमिल, कन्नड और मलयालम ये तीनो भाषायें कुछ समय तक साथ थी। बाद मे ये भी स्वतत्र हो गई और स्वय अपनी अलग सत्ता बनाने लगी। लगभग ई० सन् पाँचवी-छठी सदी मे कन्नड भाषा स्वतन्त्र हुई होगी और कन्नड प्रदेश के नरेश इसे प्रोत्साहन देने लगे होगे। परन्तु विद्वानो की राय है कि ईसा से पूर्व ही बनवासि मे कन्नड का कोई रूप अवश्य प्रचलित रहा होगा। कहा जाता है कि दूसरी सदी के एक यूनानी नाटक मे कन्नड वाक्य उपलब्ध होते हैं। किन्तु नृपतुग द्वारा दिये गये उद्धरणो से भी स्पष्ट है कि उस युग मे कन्नड भाषा अनगढ ही थी।

इसमे सदेह नही है कि कन्नड साहित्य प्रारम्भ मे ही सस्कृत साहित्य से स्फूर्ति ग्रहण करता आया है। कन्नड पर सस्कृत भाषा का प्रभाव भाषा तथा साहित्य दोनो दृष्टियो से निर्विवाद है। अब यह धारणा भी पुष्ट होती जा रही है कि लगभग छठी सदी से पहले कन्नड मे ग्रथ-निर्माण नही हुआ होगा। नृपतुग के शासनकाल तक आते-आते सस्कृत-साहित्य ह्रासोन्मुखी हो उठा था। हाँ, उस समय महाभारत, भागवत, हरिवश, रामायण और विभिन्न पुराण आदि ग्रथ सुविख्यात थे। शिक्षित समाज मे कालिदास, भारवि, माघ, भवभूति, भट्टनारायण, भर्तृहरि, बाण और सुबधु जैसे कवि एव भरत, दण्डी, वामन आदि आलकारिक सुपरिचित हो गये थे।

उस युग मे सस्कृत की स्फूर्ति और प्रोत्साहन से कन्नड भाषा रूपी बालिका भावभगिमाओ के साथ नाचने लगी थी। नृपतुग और पप की देख रेख मे वह बालिका उत्तरोत्तर बढी। इनकी रचनाओ में सस्कृत की भरमार ही इसका पुष्ट प्रमाण है। नृपतुग गद्य शैली के लिए बाण-विरचित हर्षचरित, कादम्बरी आदि को आदर्श बताते हैं। इसी प्रकार पद्य-शैली के लिए वे

नारायण, भारवि, कालिदास और माघ आदि संस्कृत कवियो के नामो का गौरव के साथ उल्लेख करते हैं। संस्कृत कवियो का उल्लेख पप की रचनाओ मे नही मिलता। किन्तु श्रीहर्ष, कालिदास, भारवि, बाण, भट्टनारायण आदि संस्कृत कवियो के भाव तथा शिल्प पप की कृतियो मे दृष्टिगोचर होते हैं। रचना-तन्त्र में कालिदास ने अपने को सौगुना बढ़ा-चढ़ाकर कहने मे पोन्न संकोच नही करता है। हाँ, रन्न ने बड़ी नम्रता से रामायण, महाभारत के कवियो और पद्य-शैली मे कालिदास, गद्यविधान मे बाण आदि के प्रति अभिनंदन के साथ आदर भी व्यक्त किया है। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि आरंभिक कन्नड कवि संस्कृत के विख्यात रचनाकारो का अवश्य अनुसरण करते आये हैं।

भाव, रीति और वस्तु के अतिरिक्त कन्नड कवियो ने संस्कृत के छन्द भी अपनाये हुए थे। रामायण, महाभारत, रघुवंश और इतर नाटक आदि संस्कृत की श्रेष्ठ रचनाओ मे अनुष्टुप्, इन्द्रवज्रा, वंशस्थ, मालिनी और आर्या बड़े लोकप्रिय छन्द थे। नृपतुंग, नागवर्म और केशिराज ने जो उद्धरण दिये हैं, उन आधार पर पूर्वोक्त निष्कर्ष निकाला जा सकता है। वर्णवृत्तो मे अनेक प्रयोग करने के बाद उन्हे कन्नड की प्रकृति के अनुकूल न देखकर कवियो ने उनका परित्याग कर, कंद,* चत्तरमाला, षट्पदि आदि का प्रयोग आरंभ किया होगा। कालान्तर मे जब संस्कृत मे चम्पूशैली लोकप्रिय हुई तो कन्नड के जैन कवियो ने भी इस काव्यविधा को खूब अपनाया।

संस्कृत की काव्यपरम्परा से अनुप्राणित होकर कन्नड काव्य के सुनि-सम्पन्न रूप धारण करने के पूर्व कन्नड प्रदेश मे संस्कृत भाषा द्वारा प्रचारित सभ्यता एवं संस्कृति का प्रभाव कम नही था। यह प्रभाव ईसा पूर्व तीसरी सदी से ही देखने मे आता है। चित्रदुर्ग के आसपास उपलब्ध अशोककालीन प्राकृत अभिलेख ही इसके सुदृढ प्रमाण हैं। आरंभ मे संस्कृत तथा प्राकृत राज्याश्रित भाषायें थी। धीरे-धीरे यह गौरव देशी-भाषाओ को प्राप्त हुआ। कन्नड भी काव्योपयोगी मानी गई। अशोक के ये अभिलेख ब्राह्मी-लिपि मे हैं। इसी/ ब्राह्मी से कन्नड लिपि का विकास हुआ होगा। कन्नड मे प्राकृत की पदावलियाँ यथेष्ट हैं। वैयाकरणो के कथनानुसार ये पद संस्कृत से अपभ्रंश की अवस्था को प्राप्त करने के पूर्व के हैं। इन पदो का विकास धर्म, दर्शन, सभ्यता और इतिहास आदि से संबद्ध था।

---

*कन्नड का अपना छंद।

कन्नड प्रदेश मे ब्राह्मण, जैन और बौद्ध धर्म प्रमुख थे। हाँ, शुरू मे ब्राह्मणों ने धर्म-प्रचार करने के लिए देशी भाषा का व्यवहार नही किया। उनका कार्य सस्कृत मे ही चलता रहा। बौद्धो ने देशी भाषा का व्यवहार किया होगा। पर उस युग मे प्राकृत का ही सर्वाधिक प्रचार था। कन्नड में बौद्धो ने कुछ लिखा था या नही, इसका कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं होता। यदि उन्होंने कन्नड मे कुछ लिखा भी हो तो ८वी-९वी सदी तक बौद्ध धर्म के दक्षिण मे लुप्तप्राय हो जाने के कारण, उनके विहारो के साथ ये रचनायें भी कालकवलित हुई होगी। आज उपलब्ध सामग्री के आधार पर हम इतना निस्सदेह कह सकते हैं कि जैन धर्म-सबधी साहित्य कन्नड मे प्रचुर परिमाण में उपलब्ध है। आरभ मे इन ग्रथो का रूप वीरशैवधर्मकालीन वचनशैली में रहा होगा जिसमे सिद्धान्त के निरूपण तथा दर्शन सबधी व्याख्या को महत्त्वपूर्ण स्थान मिला था। उस समय तीर्थंकरो की कथायें और पुराण पुरुषो की जीवनियाँ चरितकाव्य की शैली मे रची गई होगी। कन्नड जैन कवियो ने रामायण, महाभारत और हरिवश का वर्णन जैन संप्रदाय के अनुसार ही किया है। विद्वानो की राय है कि प्रथम से आठवी सदी तक जैनाचार्यों ने शास्त्रार्थ मे अन्य धर्मावलवियो को पराजित कर राजाओ मे द्वारा विशेष रूप से सम्मान प्राप्त किया था। समतभद्र, कवि परमेष्ठि, पूज्यपाद, अकलक आदि अनेक आचार्य ऐसे हैं जिनका गुणगान जैन कवियो ने मुक्तकठ से किया है। खेद है कि इनकी कोई रचना आज तक कन्नड मे दिखाई नही देती।

सक्षेप मे यही कहा जा सकता है कि ईसा की छठी-सातवी सदी तक कन्नड प्रदेश मे सस्कृत का ही प्रचार था और संस्कृत मे ही धर्म के उद्बोधन का कार्य होता रहा। इतिहास, पुराण, कथावृत्त मे ही उपलब्ध थे। आरभ मे सस्कृत और प्राकृत की पदावलियो से देशी-भाषा चेतना-सपन्न बनाई गई थी। यह तैयारी पूरी होते ही कन्नड मे काव्य-निर्माण का आरंभ हुआ।

अब यह प्रश्न उठ सकता है कि सस्कृत साहित्य के प्रचार से पहले दक्षिण-भारत में अर्थात् दक्षिण के निवासियो मे क्या कवि-प्रतिभा ही नहीं थी? उस प्राचीनतम काल मे भले ही भाषा एक ही रही हो अथवा चार-पाँच, परन्तु जनता मे सभ्यता का प्रचार अवश्य हुआ था। इसके लिए इतिहासकार विपुल प्रमाण उपस्थित करते हैं। उस युग मे कन्नड केवल- जन-बोली ही नही रही होगी अपितु उसमे काव्य-रचना भी होती रही होगी। हो सकता है कि उसका मौखिक रूप ही रहा हो, लिखित रूप मे कुछ भी प्राप्त न हो।

संभव है कि वह स्मृति-परपरा मे सुरक्षित भी रहता आया हो, किन्तु धीरे-धीरे उत्तम साहित्य का प्रभाव छा जाने से देशी-भाषा की कविता का अस्तित्व लुप्त हो गया हो। यह केवल कन्नड की ही बात नही है, अन्य कई भाषाओ के आदिम रूप की भी यही दशा दिखाई देती है। कन्नड मे आरभ मे लघु रचनायें ही बनी होगी और पद्य-शैली मे ही इनका निर्माण हुआ होगा। कन्नड क्षेत्र मे पहेलियाँ, फसल कटाई, मद्यपान, विवाह और मृत्यु आदि विषयो पर अनेक लोकगीत आज भी उपलब्ध हैं।

लोकगीतो मे युद्ध का और कलह का भी वर्णन होता था। इनमे रोचक एव प्रसगोचित लघुकथायें भी रही हैं। इन्ही से उस युग की कविता के लिए सामग्री सुलभ हुई होगी। आज समाज में प्रचलित लोकगीत प्राचीन लोक गीतो के ढर्रे पर ही चल पडे होगे। स्त्रियाँ धान कूटते समय ये गीत गाया करती थीं। हाँ, इन गीतो के रचयिता काव्य के लक्षणो से अवश्य अपरिचित थे। ऐसे व्यक्तियों को शास्त्रीय परम्परा के अनुयायी दुष्कवि कहा करते थे और उनकी उपेक्षा ही करते थे। अहमन्य कवियो के हास-परिहास के परिणाम स्वरूप ये लोकगीत उपेक्षित हो गये और इनका अस्तित्व नही रह सका। हाँ, इनके अस्तित्व के प्रमाण अवश्य रह गये। कवि सस्कृत और प्राकृत मे ही नहीं; द्रविड देशी-भाषाओ मे भी काव्य-निर्माण किया करते थे। इनके रूप, भाव और बन्ध स्वतन्त्र होते थे।

शिक्षित समाज मे उस समय धर्म से सम्बन्ध रखनेवाले ग्रथ, आख्यान आदि ही प्रचलित थे। पर जनता मे, विशेषत: स्त्रियो मे, देशी-भाषाओ के छन्दो मे उपलब्ध रचनायें ही लोकप्रिय थीं। धीरे-धीरे लोकभाषा के ये नमूने शिष्ट साहित्य के लक्षण ग्रथो मे भी स्वीकृत होते गये। लक्षणकारो के अनुसार देशी, मार्गी के भेद का यही आधार प्रतीत होता है। जैन साहित्य की अपेक्षा जब वीरशैव साहित्य का प्रचार बढने लगा तब इन वीरशैव कवियो ने इन्हीं देशी छन्दो का प्रयोग किया और इन्हे साहित्यिक गौरव प्राप्त हुआ।

नागवर्मरचित छन्दोम्बुधि मे ये छन्द सस्कृत के छन्दो से पृथक वर्णित मिलते हैं। ब्रह्म, विष्णु और रुद्र इन तीन अक्षरो से इनका निर्माण हुआ है। इनमें प्रास का निर्वाह तो हुआ है, पर यति का कोई नियम नही रहा। द्विपदी, त्रिपदी, चौपदी, अक्करगीतिका (अक्षरगीतिका), एळे, षट्पदी,[1] आदि

---

१ कन्नड के छन्द।

इसी कोटि के छन्द हैं। ताल व लय के अनुसार ये गाये जा सकते हैं। इनके प्रभाव से प्राकृत के छन्दो से प्राप्त कद, रगळे[1] कन्नड की प्रकृति के अनुकूल लगे। ये मात्रागण हैं और गेय हैं। अत· संस्कृत और प्राकृत से विरासत मे मिले पद्यवृत्तो पर भी इनका पर्याप्त प्रभाव पडा है।

प्रास का निर्वाह तथा यतिभग इनके साधारण लक्षण हो गये थे। कई शिलालेख इसी छन्द मे मिले हैं। लगभग ७०० ई० मे रचित बादामी के शिला, लेख त्रिपदी मे हैं।

साधुगे साधु माधुर्यंगे माधुर्यं
बाधिप्प कलिगे कलियुग विपरीत
माधवनीतन् पेरनल्ल ॥

[साधु के लिए साधु, मधुर के लिए मधुर, सतानेवाले कलि के लिए कलियुग का परम विरोधी यह माधव असाधारण है]

कट्टिद सिंघमन् कॆट्टोदे, नेमगेन्दु
बिट्टबोल् कलिगे विपरीतगहितक्कॆळ
कॆट्टर् मेण् सत्तरविचारं ॥

[बधन मे पडे सिंह को कोई इस विचार से बधनमुक्त कर दे, कि अपना तो इससे कोई नुकसान नही। हाँ, इसकी उपेक्षा करो तो इससे दूसरो का बडा अहित होना निश्चित है। दूसरो को मृत्युमुख मे जाना पडता है।]

श्रवणबेळगोळ मे ई० सन् ९४२ मे उत्कीर्ण शिलालेख इस प्रकार अक्कर· छन्द में हैं—

ओलगं दक्षिणसुकरदुष्करमं पोरगण सुकरदुष्करभेदम
ओळगे वामदविषममनल्लिय विषमदुष्करमखिलदरपोरग।
गलिकॆयॆनिपति विषममनदरति विषमदुष्करमेवदुष्टरं
एळेयोळोर्वने चारिसल् बल्लं नाल्कु प्रकरणमनिन्द्रराज ॥

[मन के भीतर अनुकूल सरल और जटिल हैं, बाहर भी सरल और जटिल का भेद है। भीतर प्रतिकूल विषमता है। इसके बाहर विषम जटिलता भी है। इनसे ऊपर विषमतर और विषमतम जटिलता है। इन चारो अवस्थाओ को आदि मे ही रोकनेवाला एकमात्र समर्थ व्यक्ति है इन्द्रराज।]

---

१. कन्नड के छन्द।

नृपतुग ने अनुष्टुप् का जो उद्धरण दिया है उसमे प्रास का निर्वाह है—

तारा जानकिय पोगि
तारा तरळनेत्रेयं ।
ताराधिपतितेजस्वी
तारदिविजोदया ॥ २ १२८ ॥

पेरनावं धराचक
त्त्रेय केळेयप्पवं ।
नेरेयारेणेयॆंतन्नं
कुरितल्लिगे बन्नमं ॥

[जानकी को साथ बुला ले जाओ । चचल नेत्रवाली को साथ ले जाओ । चन्द्रमा के समान तेजस्वी विजय का सन्देश लाओ । धरित्री के लिए दूसरा कौन बडा है ? कौन साथी है ? कौन सहारा है ? कौन बराबर है ?· ···]

पप के समय तक अनुष्टुप् जैसे वृत्त लुप्तप्राय हो गये थे । उस वक्त वृत्त और कद दोनो प्रमुख माने जाते थे । चपूकाव्यो मे ये छन्द प्रयुक्त मिलते है, पर विरल ही । गीत, आखेट, नगरवर्णन, स्त्रीवर्णन, विवाह और गीत आदि के लिए त्रिपदी, अक्कर और रगळे का ही प्रयोग होता रहा । चपू और चरित आदि काव्यो मे लोकगीतो की धुन का समावेश हुआ, जिन्हे सस्कृत के लक्षण ग्रथो मे कोई स्थान नही मिला है ।

इस विस्तृत विवेचन का यही आशय है कि लगभग ई० सन् छठी-सातवी सदी तक कन्नड प्रदेश मे सस्कृत मे वर्णित धर्म, सभ्यता तथा साहित्य का प्रचार था । इससे कन्नड भाषा परिपुष्ट होने लगी तथा उसमे कविता रची जाने लगी । आरम्भ मे सस्कृत का प्रभाव व्यापक था । उस समय भी ठेठ भाषा मे देशी छन्दो मे रचनायें अवश्य हुई होगी, पर वे आज उपलब्ध नही हैं । हो सकता है कि उस युग के ग्रथो मे ये लोकगीत छाया के रूप मे रहकर वीरशैव साहित्यकारो की कृपा से पुनरुज्जीवित हुए हो । लगभग सातवी से दसवी सदी के बीच उपलब्ध ग्रथो पर शिलालेखो के आधार पर कन्नड साहित्य की ऐतिहासिक रूपरेखा निम्न प्रकार दी जा सकती है—

शिलालेखो एव भट्टाकलक और देवचन्द्र के अनुसार, श्रीवर्धदेव और नृपतुग के अनुसार, दुर्विनीत, श्रीविजय, केशिराज, मल्लिकार्जुन और विद्यानन्द के अनुसार । श्रीविजय, असग, गुणनदि और गुणवर्म इस युग के मुख्य कवि

माने जाते हैं। ये सभी जैन-धर्मावलम्बी थे। इनकी कृतियाँ दो रूपों में मिलती हैं। सिद्धान्तप्रतिपादक तथा तीर्थंकरवृत्तात्मक। तत्कालीन रचनाओ के अवलोकन से नृपतुग को उनमे जो त्रुटियाँ दिखाई दी, उन्हे दूर कर परवर्ती कवियों का मार्गदर्शन करने के लिए उसने 'कविराज मार्ग' नामक लक्षणग्रन्थ रचा होगा। प्रत्येक जैन कवि का सक्षिप्त परिचय नीचे दिया जा रहा है—

श्रीवर्धदेव (लगभग ६५० ई०)

नृपतुंग ने इनका उल्लेख नहीं किया है। परन्तु ई० सन् ११२९ में उत्कीर्ण श्रवणबेळगोळ के ६७वें शिलालेख मे उल्लेख है कि इन्होंने चूडामणि-काव्य रचा था और दण्डी ने इनका गुणगान किया था। कवि दण्डी सातवीं सदी मे हुए थे। अत ये भी उसी समय के मालूम होते हैं। भट्टारक अकलक ने (१६०४ ई०) कन्नड की महिमा का वर्णन करते हुए इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में कहा है कि 'चूडामणि' तत्त्वार्थ महाशास्त्र की व्याख्या है और इसके रचयिता ९६ हजार ग्रन्थो के निर्माता हैं। देवचन्द्र (१८३० ई०) लिखते हैं कि तुम्बुलूर नामक आचार्य २४ हजार ग्रथों के रचयिता हैं और इन्होने कन्नड में चूडामणि की व्याख्या भी लिखी है। चामुण्डराय ने (९७८ ई०) तुम्बुलूराचार्य नामक गुरु का स्तवन किया है। हाँ, इस बात का निश्चित प्रमाण नही है कि चूडामणि-काव्य और चूडामणि-व्याख्या एक ही ग्रथ है या भिन्न-भिन्न।

दुर्विनीत, श्रीविजय

नृपतुग के अनुसार विमलोदय, नागार्जुन, जयबन्धु, दुर्विनीत, श्रीविजय और कवीश्वर आदि कन्नड के कई कवि हुए हैं। ये सभी जैन ही मालूम होते हैं। अभिलेखो से विदित होता है कि दुर्विनीत गगराज थे। दुर्विनीत सातवीं सदी के आरम्भ मे जीवित थे और इनके दरबार मे कुछ काल तक कवि भारवि रहे थे। भारवि-रचित किरातार्जुनीय के १५वें सर्ग की व्याख्या दुर्विनीत ने ही की है।

श्रीविजय का उल्लेख केशिराज ने भी किया है। दुर्गसिंह ने (११४५ ई०) श्रीविजय की कविता को कवियो के लिए दर्पण एव दीपक बताया है। मगरस (१५०८ ई०) और दोड्डय्य (१५५० ई० लगभग) इन दोनो का कहना है कि श्रीविजय ने 'चन्द्रप्रभपुराण' चपूशैली मे लिखा है। कुछ विद्वानो का यह भी अनुमान है कि श्रीविजय ने ही नृपतुग के उपनाम से कविराजमार्ग का प्रणयन किया था।

नृपतुग (८१४–८७७ ई०)

ये राष्ट्रकूटवश के राजा थे। मान्यखेट इनकी राजधानी थी। अमोघ-वर्ष और अतिशयधवल नृपतुग की उपाधियाँ थी। सस्कृत के 'आदिपुराण' के रचयिता जिनसेन इनके पूज्य गुरु थे। 'प्रश्नोत्तररत्नमालिका'[1] नामक सस्कृत ग्रन्थ मे इन्होंने लिखा है कि विरक्त हो, मैंने स्वय राज्य का परित्याग किया है।

कविराजमार्ग इनका लक्षणग्रन्थ है। इसमे दोषादोषानुवर्णननिर्णय, शब्दालकार तथा अर्थालकार नाम के तीन परिच्छेद हैं। प्रत्येक परिच्छेद के अत मे 'नृपतुगदेवानुमत' अकित है। आश्चर्य है कि इसमे 'कृतम्' न होकर 'अनुमतम्' है। परिच्छेद के अतिम पद्य मे 'श्री विजयप्रभूतम्' लिखा मिलता है। साथ ही साथ ग्रन्थ के अंत मे 'नृपतुंग के सभासद द्वारा कथितकाव्यम्' कहा है। इन्ही कारणो से विद्वानो ने अनुमान लगाया है कि श्रीविजय नृपतु ग के सभासद थे और इन्होने ही नृपतुग के नाम से यह ग्रन्थ लिखा होगा। कुछ लोगो की यह भी राय है कि कविराजमार्ग के रचयिता श्रीविजय नही, किन्तु कवीश्वर हैं।

नागवर्म और भट्टारक अकलक इन दोनो की मान्यता है कि नृपतुंग ही कविराजमार्ग के प्रणेता हैं। अगर ग्रथ श्रीविजय या कवीश्वर के द्वारा निर्मित होता तो स्पष्ट रूप से अपने ही नाम 'परम श्रीविजय' या 'कवीश्वर' देने मे कोई रोक तो थी नही। सस्कृत मे नृपतुग-प्रणीत एक ग्रथ है भी। कविराज-मार्ग मौलिक ग्रथ नही है। दण्डी के ग्रथ का कन्नड रूपान्तर है। दण्डी की मान्यताओ से सहमत होने के नाते ग्रथ मे 'अनुमतम्' लिखा होगा। नही तो वे 'कृतम्' ही का प्रयोग कर सकते थे। इन्ही कारणो से कविराजमार्ग के रचयिता नृपतुग ही ठहरते हैं, श्रीविजय या कवीश्वर नही।

इस ग्रथ मे अलकारशास्त्र का निरूपण तो हुआ ही है, साथ ही साथ उस युग की कन्नड के सम्बन्ध मे जो तथ्य यहाँ उपलब्ध होता है, वह साहित्य के इतिहासकार की दृष्टि से कम महत्त्वपूर्ण नही है। इसमे कन्नड भाषा की भौगोलिक सीमा के बारे मे उल्लेख है 'कन्नड प्रदेश कावेरी से

---

१. विशेष जिज्ञासु 'वीरवाणी' वर्ष २२, अक १३-१४ (जयपुर) मे प्रकाशित मेरा लेख देखें।

गोदावरी तक फैला है।' इससे स्पष्ट है कि उस युग मे महाराष्ट्री भाषा ने कन्नड को और दक्षिण मे नहीं ठेला था। ई० सन् १७वी सदी के कवि नजुण्ड ने इस पद की व्याख्या इस प्रकार की है—'कावेरी से गोदावरी तक वसुधातल मे फैला कन्नड जनपद (कर्णाटक जनपद) वर्णनातीत है।'

कविराजमार्ग मे कन्नड जनपद के मध्यवर्ती भाग अर्थात् पट्टकल्लु कोपल, लक्ष्मेश्वर आदि को शुद्ध कन्नड प्रदेश माना गया है। इसी प्रकार कन्नड भाषा-भाषियो को सूक्ष्म बुद्धिसपन्न तथा काव्यगत दोषो को पहचानने में तीक्ष्णमति कहा गया है। साथ ही साथ इसमे कन्नड भाषा के उत्तर-दक्षिण दो भेद भी बताये गये है। उदाहरणस्वरूप इसमे अलग-अलग शब्दभेद भी निरूपित हैं। बेदडे तथा चत्ताण नाम की द्विविध पद्यशैलियो का उल्लेख भी किया गया है। कन्द, वृत्त या एक एक जाति का नाम बेदडे एव कई कन्द, वृत्त, अक्षर, चौपदी, गीतिका और त्रिपदी आदि का नाम चत्ताण कहा गया है। कविराजमार्ग की भाषा पुरानी कन्नड है। कन्द ही इसमे प्रयुक्त प्रधान छन्द है। इसमे गीतिका और सस्कृत के वर्णवृत्तो का प्रयोग विरल है और प्रत्येक परिच्छेद के अन्त मे गद्य का व्यवहार परिलक्षित होता है। कन्नड का आद्य ग्रन्थ कविराजमार्ग कन्नड साहित्य के इतिहास की नादी होकर आगे की कन्नड परम्परा के धैर्योत्साह के लिए आकर हुआ। वस्तुत यह ग्रन्थ कन्नड भाषा-भाषियो के लिए गौरव की वस्तु है। इसमे तत्कालीन कन्नड भाषा-भाषियो का परिचय बहुत ही सुन्दर ढग से दिया गया है। किसी भी भाषा मे एक लक्षण ग्रन्थ रचा जाने के पूर्व उस भाषा मे अन्यान्य ग्रन्थो का रचा जाना भी सर्वथा अनिवार्य है। इस नियमानुसार नृपतुग ने अपनी बहुमूल्य कृति मे अपने से पूर्व के अनेक कवियो के केवल नाम ही नही दिये हैं, बल्कि उन पूर्व कवियो के पद्य भी उद्धृत किये हैं।

असग, गुणनन्दि और गुणवर्म

केशिराज के व्याकरण मे इन कवियो का उल्लेख मिलता है। पोन्न कवि का कथन है कि असग कन्नड कवियो मे सौगुने प्रतिभाशाली थे। गुणनन्दि और गुणवर्म का काल ई० सन् ९०० माना गया है। नृपतुग ने इन कवियों का उल्लेख नही किया है। अत ये परवर्तीकाल के प्रतीत होते हैं। मल्लिकार्जुन ने अपने 'सूक्तिसुधार्णव' मे कहा है कि गुणनन्दि के उदाहरण मेरे इस ग्रन्थ मे दिये जा रहे हैं। गुणवर्म नाम के दो व्यक्ति माने गये हैं। जन्न

कवि (१२०९) ने एक गुणवर्म का तथा नयसेन (१११२ ई०) ने दूसरे गुणवर्म का गुणगान किया है। यहाँ पर गुणवर्म प्रथम (९०० ई०) का वर्णन किया गया है।

केशिराज ने गुणवर्म को 'हरिवंश' का रचयिता माना है। इसी ग्रन्थ को पार्श्व ने 'नेमिनाथपुराण' कहा है। 'भुवनैकवीर' इनका दूसरा ग्रन्थ है। विद्यानन्द के काव्यसार से बताया गया है कि 'शूद्रक' नामक ग्रन्थ भी इन्हीं का है। इसमें गंगराज एरेयप्प (८८६-९१३ ई०) की तुलना शूद्रक से की गई है। गंगराज की महेन्द्रांतक, भामट आदि उपाधियाँ थीं। यह उल्लेखनीय है कि अपने आश्रयदाता के गुणगान के प्रत्येक जैन कवि एक लौकिक काव्य और तीर्थंकरों की जीवनी से संबद्ध दूसरा धार्मिक काव्य प्रायः लिखता आ रहा है। इस परम्परा के प्रवर्तक गुणवर्म माने गये हैं। परवर्ती कवि पम्प, पोन्न और रन्न ने यही पद्धति अपनाई है। पम्प से पहले ही कन्नड में चम्पू शैली में सफल ग्रन्थ रचने का श्रेय गुणवर्म को प्राप्त है।

शिवकोट्याचार्य

गद्य से पहले शिवकोट्याचार्य का नाम आता है। यह 'वड्डाराधने' के रचयिता हैं। कन्नड साहित्य की यह असाधारण रचना मानी गई है। कन्नड का प्रथम गद्यग्रन्थ यही है। इसमें १९ मनोरंजक कहानियाँ हैं। प्रत्येक कहानी के आरम्भ में एक प्राकृत गाहा (गाथा) है। चंपूकी काव्यों में पृथक पद्य की तरह यह गाहा कहानी का सार बता देती है। इन गाहाओं का कन्नड में अर्थ देते हुए कवि काव्य को प्रारम्भ करता है। इसकी वर्णन शैली बड़ी रोचक और मन को मोह लेनेवाली है। पद-योजना भी बेजोड़ है।

संवाद शैली सधी हुई है और यह कहानी की गति को बढ़ाने में सफल है। काव्य की सरल, सत्त्वपूर्ण देशी शैली शिवकोट्याचार्य की प्रतिभा को प्रतिबिंबित करती है। प्राध्यापक डी० एल० नरसिंहाचार्यजी का कहना है कि वड्डाराधने का दूसरा नाम 'उपसर्ग केवलियों की कथा' रहा है। प्रत्येक कहानी का नायक एक-न-एक उपसर्ग के कारण देह त्यागने को प्रस्तुत होकर स्वर्ग पहुँचता है। कहानी में यही वृत्त होने से यह नाम सार्थक हुआ है। सल्लेखनाव्रत के द्वारा समाधि को प्राप्त करनेवालों के लिए ये कथाएँ विरक्ति को जगाने में पूर्ण सहायक हैं। यही नहीं, इस रचना में उस युग की

भाषा शैली के सुन्दर नमूने भी मिल जाते हैं। कन्नड साहित्य का यह महत्त्व-पूर्ण ग्रन्थ अपने युग का सास्कृतिक जीवन चित्रित करने मे भी सफल हुआ है। 'कविराजमार्ग' मे इस अनुपम कृति का उल्लेख नही है। अतः यह अनुमान किया जाता है कि पम्पपूर्व युग मे अर्थात् सन् ९२०-९३० ई० के लगभग इसका प्रणयन हुआ होगा। इसमे पुरानी कन्नड के प्रयोग सहज एव सुन्दर ढंग से मोती-सदृश पदो के द्वारा व्यक्त किये गये हैं। सक्षेप मे यही पपपूर्वयुग के जैन साहित्य का इतिहास है।

इस युग के साहित्य मे वर्णित जनजीवन उच्च वर्ग तक सीमित था। राजदरबार या कही-कही सैनिको का जीवन भी यहाँ अंकित मिलता है। इस युग की राजनैतिक, सामाजिक तथा धार्मिक परिस्थितियाँ भी प्रौढ रचनाओ के निर्माण के लिए प्रेरक सिद्ध हुईं। ईसा की दसवी सदी के पूर्वार्द्ध मे राष्ट्रकूट वश के नरेश शक्तिशाली हुए। इस सदी के अत तक वे उत्कर्ष को प्राप्त होते गये। सहसा उनका वैभव लुप्त हो गया। हाँ, वेमलवाड के चालुक्य तथा दक्षिण के गंग वश के राजा बराबर राष्ट्रकूट राजाओ की सहायता करते रहे। ई० सन् ग्यारहवीं सदी मे कल्याणी मे चालुक्य प्रबल हुए। चोल वश के साथ इनका सघर्ष बराबर जारी रहा। चोलो के प्रताप के कारण गगराज्य का पतन हो गया। अकेले चालुक्य राज्यकुल पर कर्णाटक की रक्षा का भार आ पडा। राजकुल की आपसी फूट के कारण यह वश कुछ समय तक दुर्बल अवश्य था, किन्तु जब विक्रमादित्य षष्ठ अपने भाई को कैद कर ई० सन् १०७६ में गद्दी पर विराजमान हुआ, तब से कर्णाटक का भाग्य फिर चमकने लगा। वह एक के बाद एक कई युद्धो में विजयी हुआ। साथ ही साथ कर्णाटक का साम्राज्य विस्तृत होने लगा। इसके बाद चालुक्य वश का वैभव घटने लगा और बारहवीं सदी के अन्त तक होय्सल साम्राज्य की नीव पडते ही चालुक्य लुप्त हो गये।

कर्णाटक में राजनैतिक परिस्थिति के अनुरूप शस्त्रास्त्रो की झकार भी सुनाई पडी। युद्ध का नाम सुनते ही सभवत: जन-जन की भुजाएँ फड़क उठती रही होगी। उस वक्त नगर या गाँव की रक्षा के लिए, स्त्रियो की लज्जा बचाने के लिए, चौपायो की रक्षा के लिए प्राण त्यागने का सकल्प सानद लोग करते रहे। वीरो की अगणित स्मारक-शिलायें ही इसका ज्वलत प्रमाण हैं। ये शिलायें कर्णाटक मे सर्वत्र मिलती हैं। वीरो की यह धारणा हो गयी थी कि युद्ध मे प्राण त्यागने पर स्वर्ग मिलेगा। यह धारणा उस युग के शूर-वीर शासकों के प्रोत्साहन से और भी दृढ़ हो गयी थी। उस युग के कवि कलम चलाने में ही नहीं, तलवार चलाने मे भी प्रवीण थे। महाकवि ही नही थे, बडे रणकुशल भी थे। नागवर्म, चामुण्डराय आदि भी बडे प्रतापी थे। इसीलिए यह युग कन्नड साहित्य का 'वीरयुग' भी कहलाता है।

इस युग की धार्मिक परिस्थिति भी बड़ी अव्यवस्थित थी। कर्णाटक में इस समय वैदिक और जैन इन दो ही सप्रदायो का प्रभुत्व था। इस युग के कर्णाटक के शासक अधिकाश वैदिक सप्रदाय के अनुयायी थे। परन्तु इन्होने जैन धर्म को भी प्रोत्साहित किया। धर्म के नाम पर कही भी वैर-विरोध नहीं दिखाई पडता था। दक्षिण मे गगवश का विशेष प्रभुत्व था। उसके शासक जैन धर्मावलबी थे और वे इसकी प्रगति मे विशेष अभिरुचि लेते थे। दसवी सदी के अन्त मे चामुण्डराय ने श्रवणवेळगोळ मे गोम्मटेश्वर की बेजोड प्रतिमा प्रतिष्ठापित की और धार्मिक एव कला जगत् में इन्होने अमरत्व प्राप्त किया। ग्यारहवी सदी के आरभ के साथ धर्म-सप्रदायो के बीच कटुता बढती गई। चोलवश के प्रताप के सामने गगवश का प्रभुत्व निस्तेज हुआ। जैन-धर्म का ह्रास भी अनिवार्य-सा हो गया। पर चालुक्यवश के पौरुष के कारण चोल कुछ दबे-से रहे और जैन धर्म लुप्त होने से बच गया। परन्तु उसमे पहले जैसी काति न रह गई। फलस्वरूप बारहवी सदी मे जैन साहित्य भी तर्क-बहुल और शास्त्रार्थप्रधान हो गया।

इस युग के अधिकाश कवि जैन थे। इसमे परम्परागत प्रौढ शैली के प्रबध महाकाव्य ही लिखे गये। इन्हे मार्ग शैली के काव्य भी कहते हैं। चम्पू इस युग का प्रधान काव्य रूप होने से इस युग का नाम 'चम्पू युग' भी है। चम्पू-काव्य-युग के 'रत्नत्रय' पप, पोन्न, तथा रन्न माने जाते हैं। तीनो ही जैन थे। तीनो ने अपने आश्रयदाताओ की प्रशसा मे एक ओर लौकिक काव्य और धर्म के प्रचारार्थ दूसरी ओर धार्मिक काव्य लिखे हैं। इन रचनाओ मे इन महापुरुषो के जीवनवृत्त भी बिखरे पडे हैं। इन तीनो का विवेचन नीचे किया जाता है।

आदि कवि पंप

'विस्तृत क्षेत्र मे फैली हुई कन्नड भाषा में एकमात्र सत्कवि पप हैं। धरती पर सम्राट, स्वर्ग मे देवराज, पाताल मे नागराज, गगन मे रवि के समान पप जगत् मे वदनीय है। उनकी कृपा से मुझे वाग्विलास सुलभ हो।' यह अभिलाषा व्यक्त करनेवाला निष्पक्ष कवि नागराज है जो आज से छ सौ वर्ष पहले हुआ था। इस स्तवन से आदि कवि पप की अद्भुत प्रतिभा का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। अन्य कवियो ने भी रस, भाव, व्यंजना, नादसौन्दर्य आदि गुणो का वरदान अपने-अपने काव्य मे सहर्ष मांगा है। अन्य कोई कवि पप के टक्कर का नही होने से 'कन्नड का एकमात्र कवि पप है' यह लोकोक्ति प्रचलित है। 'कविता फरमाइश या पैसे के बदले नही,

नृष्टि के सौभाग्य से बन जाती है।' कवि नागचन्द्र की यह उक्ति पप पर ही चरितार्थ होती है। पपसदृश सरस्वती की साधना मे प्रवृत्त कवि विरल ही है।

कन्नड साहित्य का आदि कवि पप ईसा की दसवी सदी का प्रतिभासपन्न विशिष्ट रचनाकार है। उसे नवयुग का प्रवर्तक भी माना जाता है। इसी युग मे प्रबधशैली का उत्कर्ष हुआ। अतः इस काल को कन्नड साहित्य का स्वर्ण युग कहा जाता है। लगभग दसवी सदी के मध्य काल से लेकर दो सदियो तक महाकवि एव आदिकवि पप का कन्नड साहित्य पर अमिट प्रभाव था। अत इस युग का नाम पपयुग' पड गया है। बारहवी सदी के अत मे कन्नड साहित्य मे कवि हरिहर का प्रादुर्भाव होता है और उसके साथ ही कन्नड साहित्य का 'नवयुग' आरभ होता है। पप के असाधारण कविव्यक्तित्व का प्रभाव इस युग में भी अवश्य रहा है, फिर भी इन दोनो के बीच का काल ही कन्नड मे पपयुग के नाम से विख्यात है। इसी से आदिकवि पप के कृतित्व की महिमा को जाना जा सकता है।

पप की दो प्रधान रचनाएँ हैं—आदिपुराण और विक्रमार्जुनविजय। ये दोनो क्रमश तीन तथा छ महीनो मे पूरी हुई थी। आदिपुराण तीर्थंकर की जीवनी से सम्बन्ध रखती है। इसमे आदि तीर्थंकर का जीवनचरित्र विस्तार मे अकित है। कई जन्मो मे उन्होने जो भोग का अनुभव किया था, उनकी स्मृति मे वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि भोगलालसा का कोई अन्त नही है। न स्वर्ग मे, न मर्त्यलोक मे ही तृष्णा की पूर्ति हो पाती है। यह तृष्णा बुझे कैसे ? इन सब बातो का गहरा विचार करते हुए वे कैवल्य पद की प्राप्ति के लिए तपस्या करने वन की ओर निकल पडते हैं। इसमे आदिनाथ के सुपुत्र भरत और बाहुबली के प्रसग भी बडे भावपूर्ण ढग से अकित किये गये हैं। आदिनाथ की दीक्षा के उपरान्त भरत सम्राट् हुआ। अपने चक्ररत्न के प्रताप से वह छहो खण्डो पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने मे समर्थ हुआ। परन्तु उसे अपने भाइयो का विरोध भी सहना पडा। भरत ने उन्हे अपने अधिकार मे करना चाहा। परन्तु वे राज्यभोग मे पूर्ण विरक्त होकर तप-साधना मे लीन हो गये। भाइयो का यह वैराग्य भरत को विस्मयकारक प्रतीत हुआ। बाहुबली से लडते समय भरत दृष्टियुद्ध, जलयुद्ध तथा मल्लयुद्ध तीनो मे परास्त हुआ। अन्त मे उसने बाहुबली पर चक्ररत्न का प्रयोग किया। इससे बाहुबली का कोई अहित नही हुआ। परन्तु बडे भाई के इस व्यवहार से खिन्न

होकर बाहुबली भी अपना विजित साम्राज्य छोडकर वन मे तपस्या के लिये चल पडे। मुक्तियात्रा पर निकला यह जीव जन्मजन्मान्तर के सस्कार से परिष्कृत होकर क्रम-क्रम से अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होता है। जीव की इस अलौकिक यात्रा के सोपान इस काव्य या पुराण मे सुन्दर ढग से वर्णित हैं। इस रचना मे कवि ने काव्य के साथ साथ धर्मोपदेश भी दिये हैं। जैन धर्म के निरूपण मे यह पुराण काव्य पूर्ण सफल हुआ है।

महाकवि पप की दूसरी रचना विक्रमार्जुनविजय[1] एक लौकिक महाकाव्य है। इसमे कवि ने अपने आश्रयदाता चालुक्य नरेश अरिकेसरी का गुणगान किया है। अरिकेसरी राष्ट्रकूटो का सामन्त था। उसे सामन्त चूडामणि माना जाता था। अरिकेसरी के स्नेह की कृपा से पम्प को विपुल वैभव, यश एव सम्मान मिला। पुराण में प्रतिपादित कर्ण-दुर्योधन की और इतिहास मे प्रतिपादित श्रीहर्ष बाण मित्रता का जो आदर्श था, वही पम्प-अरिकेसरी की मित्रता का आदर्श है। अरिकेसरी गुणार्णव कहलाए तो पप 'कवितागुणार्णव' उपाधि से विभूषित हुए। पप कलम तथा तलवार दोनों चलाने मे निपुण थे। विक्रमार्जुन जैसी महान् कलाकृति के सम्बन्ध मे विद्वानो की राय है कि कवि ने इस कुशलता से काव्य-रचना की है कि यह काव्य कन्नड साहित्य मे अद्वितीय सिद्ध हुआ। इस तरह का काव्य रचनेवाले कवि विरल ही हैं। महाकवि पम्प की इस रचना मे कथा की रोचकता तथा वर्णन की मनोहरता का परिपाक हुआ है। यह कवि के आत्मविश्वास का द्योतक है। रचना के आरम्भ मे बडी नम्रता से कवि कहता है कि मैं व्यास मुनीन्द्र द्वारा निर्मित वचनामृतरूप अगाध समुद्र को तैरने निकला हूं। हाँ, कवि व्यास होने का कोई मेरा दावा नही है। अन्त मे पम्प विश्वास करता है कि मैं अथाह सागर तैरने में अवश्य सफल हुआ हूँ। इसलिए कवि की घोषणा है कि पूर्ववर्ती समस्त काव्य अपने भारत (विक्रमार्जुन विजय) तथा आदिपुराण के सामने फीके हैं।

इस महाकाव्य के नायक अरिकेसरी हैं। कवि की मान्यता है कि अरिकेसरी महाभारत के अर्जुन के समान महाप्रतापी है और पूर्वकालीन राजाओं की अपेक्षा उसमे कई असाधारण गुण मौजूद हैं। अत. कवि ने आदि से अन्त तक अर्जुन के लिए प्रचलित सभी उपाधियो का व्यवहार अरिकेसरी के लिए किया

---

१ विशेष जिज्ञासु 'कवि पप का विक्रमार्जुनविजय' शीर्षक मेरा लेख देखें। जैन दर्शन, वर्ष २, अक १३, १९३५।

है। अभेदरूपक का निर्वाह इसमे अथ से इति तक अविच्छिन्न रूप से हुआ है। इसीलिए कवि ने अपनी रचना को समस्त भारत कहा है। इस महाकाव्य से अरिकेसरी प्रसन्न हुआ और उसने कवि को अमित वैभव ही नही, धर्मपुर नाम का एक ग्राम भी सहर्ष प्रदान किया। कवि इस महान् ग्रन्थ की महिमा का कारण कुछ और बताता है। उसका कहना है कि छल मे दुर्योधन, सत्यगुण मे सूर्यपुत्र कर्ण, पराक्रम मे भीम, बल मे शल्य, औन्नत्य मे भीष्म, धनुर्विद्या मे द्रोण, साहस मे अर्जुन और धर्मगुण मे परिशुद्धात्मा धर्मराज ये सब महाभारत की महिमा के कारण हैं। इसीलिये मेरा यह 'भारत' लोक मे समादृत है।

पप-भारत में श्रीकृष्ण का कोई ऊँचा स्थान नही है। इसमें अर्जुन का आदर सबसे बढकर है। अर्जुन श्रीकृष्ण से वीरोचित आदर्श का वर्णन इस प्रकार करता हैं, "हे कृष्ण! जो आक्रमणकारी शत्रु-राजा रूपी विशाल वृक्ष की जटे धरती से उखाडकर आकाश मे न फेंके, शरणागतो की रक्षा न करे, त्यागरूपी गुण की छाप न अंकित करे तो क्या वह मानव है? वह मानव नही कीडा है।" यहाँ अर्जुन श्रीकृष्ण का कृपाकांक्षी नही है। दृष्टिकोण की यह भिन्नता ही इसे लौकिक काव्य घोषित करती है। अन्य पात्रो के साथ दुर्योधन और कर्ण जो मूल महाभारत मे दुष्टचन्तुष्टय मे गिने जाते हैं, इसमे इन दोनो का बडा सम्मान किया गया है। दुर्योधन कवि की दृष्टि मे अभिमान धन है। वह अपनी बात का पक्का है एव अपनी जिद पर अन्त तक अडिग रहा है। दुर्योधन प्रण पूरा करने के लिए एक ही पथ पर बराबर कदम बढाता गया, न डरा, न घबराया। प्राण त्यागने के समय भी उसका प्रताप कम न हुआ।

अब प्रतिनायक कर्ण का चित्रण देखिये। कवि इसे भी प्रेम, आदर तथा गौरव प्रदान करता है। विश्वसाहित्य मे इसके जैसा अभागा दूसरा पात्र नहीं है। सूर्य का पुत्र, पृथा की कुक्षि मे जन्मा यह वीर पाण्डवो का अग्रज होते हुए भी पैदा होते ही गगा की धारा में बहा दिया गया और सूतपुत्र के यहाँ पाला-पोसा गया। परन्तु वह अपने वीरोदात्त गुण से वचित न हुआ। यौवन मे पदार्पण करते ही वह कहने लगा कि 'मेरा कोई विरोध न करे, जो भी सहायता चाहे मुझसे माँग ले। वह एक बार तीर प्रत्यञ्चा पर चढ़ा दे तो उसकी टकार से ही प्रतापी शत्रु राजाओ पर बिजली टूट-सी पडती और वे भयभीत होकर धराशायी हो जाते। कर्ण सोना काट-काटकर देता जाता तो

स्वर्णराशि का सचय करनेवाले वन्दी और मागध आदि का अर्थाभाव दूर हो जाता था। ब्राह्मणवेषधारी देवराज को कवच-कुण्डल देने मे भी उसे कोई सकोच नही हुआ था। कल्पना की समाहार शक्ति और भाषा की सामासिकता को कर्ण-प्रसग के चित्रण मे कवि ने सम्यक् अभिव्यक्ति प्रदान की है।

गुरु परशुराम के क्रोध से शाप-ग्रस्त कर्ण दुर्योधन का अन्तरग साथी हुआ। कर्ण को दुर्योधन से फोडने के लिए श्रीकृष्ण ने वडी गहरी चाल चली। श्रीकृष्ण बोले, "प्यारे कर्ण! दुर्योधन जानता है कि तू पाण्डवो का सबसे बड़ा भाई है। तुम दोनो शिकार खेलने साथ-साथ गये थे और दोनो उस समय सत्यतप ऋषि के आश्रम मे पहुँचे थे। उस वक्त ऋषि ने सबसे पहले तुम्हारा ही सादर स्वागत किया था। दुर्योधन को यह व्यवहार बहुत बुरा लगा, उसने तुम्हें किसी काम पर बाहर भेज कर ऋषि से पूछा कि मेरे रहते हुए आपने पहले सूतपुत्र का सम्मान कैसे किया और यह कहाँ तक उचित है? इस पर ऋषि ने तेरे जन्म रहस्य को उसे बता दिया। तब दुर्योधन बोला कि "अच्छा हुआ, काँटे से ही काँटे को निकालना होगा।" हाँ, कर्ण श्रीकृष्ण की बातो मे न आया। दुर्योधन से द्रोह करने को राजी न हुआ। सेनापति का पद सुशोभित करते हुए कर्ण शरशय्या पर लेटे हुए पितामह के पास जाता है और उनके चरणो मे प्रणाम करता है। साथ ही साथ उनसे क्षमायाचना करता है। कर्ण की स्वामिभक्ति से अभिभूत आर्य भीष्म कर्ण को भी अपना प्रपौत्र सम्बोधित करते हैं। कवि ने कर्ण के पात्र निरूपण मे बडा कौशल दिखाया है। यहाँ कवि अपने नायक को भी भूलकर कहता है कि भारत मे आप किसी का स्मरण करना चाहते हैं तो अन्य किसी को याद मत कीजिये, एकनिष्ठ हो कर्ण का ही स्मरण कीजिये। कर्ण की समानता कौन कर सकता है। उसकी शूरता, सच्चाई और साहस आदि जनता मे विख्यात हैं। कर्ण त्याग का तो प्रतिरूप ही है। कर्ण ग्रीक दु खान्त नाटको के नायक की याद दिलाता है। वनवास मे बचपन और यौवन का सुनहला समय बितानेवाले महाकवि पप को यदि कन्नड साहित्य का आदि और एकमात्र कवि माना गया है तो इसमे कोई आश्चर्य की बात नही है।

कविताचातुर्य, वर्णनसामर्थ्य, पात्रनिरूपण, रसपुष्टि, हिताहितमृदुवचन रूपी शैली, सुन्दर एव मार्मिक कहावतें, देशाभिमान-द्योतक, वाग्गुम्फन ये सब महाकवि पप को कर्नाटक का सार्वभौम कवि घोषित करते हैं। पंप की गरिमा को पूर्ण रूप से व्यक्त करना सम्भव नहीं है।

पोन्न

यह महाकवि राष्ट्रकूटनरेश कृष्ण तृतीय (ई० ९३९-९६८) के दरबारी कवि थे। इनकी रचना का काल ई० सन् ९५० के आसपास का रहा होगा। यह भी वेंगिमडलातर्गत पुगनूर के निवासी थे। वेंगिमडल के पुगनूर मे नागमय्य नाम का एक जैन ब्राह्मण था। मल्लपय्य और पुन्नमय्य उसके दो वीर पुत्र थे। वाणियवाडि के जिनचन्द्रदेव इनके गुरु थे और अपने गुरु के गौरवार्थ विनयपूर्वक इन दोनो भाइयो ने १६वें तीर्थंकर शातिनाथ की जीवनी पर आधारित महाकवि पोन्न के द्वारा 'शातिपुराण' की रचना कराई। इसका दूसरा नाम 'पुराणचूडामणि' है। मल्लपय्य की एक बेटी थी अत्तिमब्बे[1]। 'दान चिन्तामणि' इस महिला की उपाधि थी क्योंकि इसकी दानशीलता सर्वत्र विख्यात रही। इस देवी ने महाकवि पोन्न के शातिपुराण की एक हजार प्रतियाँ लिखवाकर रत्न एव सुवर्ण की जिनप्रतिमाओं के साथ उनका सम्पूर्ण कर्णाटक मे दान किया। अत्तिमब्बे का नाम आज भी कर्णाटक मे बडे गौरव के साथ लिया जाता है। इसने गदग तालुक के लक्कुडि नामक स्थल मे सैकडो जिनालय बनवाये थे। उन सुन्दर जिनालयो मे अब लक्कुडि मे केवल तीन जिनालय अवशिष्ट हैं और ये सर्वथा दर्शनीय हैं।

भुवनैकरामाभ्युदय' पोन्न का दूसरा काव्य है। यह अभी तक उपलब्ध नही है। यह ग्रथ उपलब्ध होता तो हमे पोन्न के आश्रयदाता के सबध मे प्रचुर सामग्री प्राप्त हो जाती। पोन्न का कहना है भुवनैकरामाभ्युदय मे २४ आश्वास हैं जो २४ लोको के मूल्य के बराबर हैं। राष्ट्रकूट कृष्ण (ई० ९३९-९६८) के सामन्त शकरगड की 'भुवनैकराम' उपाधि थी। इसलिए विद्वानो की राय है कि यह ग्रथ भुवनैकराम उपाधि से समलकृत शकरगड के प्रताप को अथवा तक्कोल मे चोल राजादित्य को पराजित करने वाले मुम्मडि कृष्ण के शौर्य की वर्णन करनेवाला काव्य होगा। 'शब्दमणिदर्पण' मे केशिराज (ई० १२६०) ने इस काव्य के कुछ अश उद्धृत किये हैं जिसे देखने से यह काव्य नि सन्देह उत्कृष्ट एव ऐतिहासिक दृष्टि से उपयुक्त मालूम होता है। परन्तु दुर्भाग्य से यह काव्य अभी तक समग्र रूप मे उपलब्ध नही हुआ है।

पोन्न रत्नत्रय मे अन्यतम हैं और मुम्मडि कृष्ण के द्वारा आदर पूर्वक

---

१ अत्तिमब्बे के जीवनवृत्त के लिए देखें, 'चन्दाबाई अभिनन्दन ग्रथ' मे प्रकाशित 'दानचिन्तामणि अत्तिमब्बे' नामक मेरा लेख।

'कविचक्रवर्ती' उपाधि को प्राप्त करनेवाले भाग्यशाली महाकवि हैं। आदि-कवि पप को भी अरिकेसरी द्वारा यह उपाधि नहीं मिली थी। 'कविचक्रवर्ती' की उपाधि को प्राप्त करनेवाले दूसरे दो जैन कवि और भी हैं रन्न और जन्न। पोन्न ने इस 'कविचक्रवर्ती' उपाधि का उल्लेख अपनी कृति मे स्वय किया है। पोन्न के पोन्निग, पोन्नमय्य, सवण आदि नाम भी थे। पोन्न अपने पूर्वकालीन पप आदि किसी भी कवि का नाम नही लेता है। विद्वानो का अभिप्राय है कि अपने कवितासामर्थ्य की प्रशसा करते हुए कवि पोन्न प्रशसा की मर्यादा को एकदम भूल गया है।

शातिपुराण मे प्रारभ के ९वें आश्वास तक तीर्थंकर शातिनाथ के ११वें पूर्वभवो का वर्णन है। केवल अतिम तीन आश्वासो मे शांतिनाथ का चरित्र प्रतिपादित है। पोन्न की इस शातिपुराण कथा मे और कमलभव (ई०१२३५) के शातिपुराण की कथा मे अनेक स्थलो पर अतर दृष्टिगोचर होता है। इसका क्या कारण है ? यह स्पष्ट रूप से ज्ञात नही है। शातिपुराण मे लोकाकार, देश-निवेशन, चतुर्गतिस्वरूप आदि जैनपुराण के आठ लक्षणो के साथ-साथ महाकाव्यो के १८ लक्षण भी मौजूद हैं। जहाँ-तहाँ विविध रसोत्पत्ति के अनुरूप रचनाएँ भी वर्तमान हैं, फिर भी कहना पडेगा कि पप और रन्न की रचनाओ मे उपलब्ध वर्णन-सौदर्य और पात्ररचनाकौशल पोन्न की कृतियो में नही है। हाँ, पोन्न का वध प्रौढ है। वस्तुन पारिभाषिक शब्द और सस्कृत भाषा का व्यामोह इन दोनो ने महाकवि पोन्न की कृतियो की शैली को क्लिष्ट वना दिया है। तथापि कविता में स्वाभाविकता, निरर्गलता और पाहित्य मौजूद हैं।

कवि ने इसमे १९ छन्दो का उपयोग किया है। काव्य मे चम्पूकाव्य के अनुकूल सुप्रसिद्ध अक्षरवृत्त एव कद अधिक हैं। उनमे भी शातरसाभिव्यक्ति के सहायक कद अत्यधिक हैं। इस पुराण मे कुल १६३६ पद्य, रगळे एव त्रिपादियाँ भी हैं। इसमे यत्र-तत्र सुन्दर कहावतें भी मौजूद हैं। 'जिनाक्षरमाला' पोन्न की दूसरी रचना है। यह एक जिनस्तुति है। 'गतप्रत्यागत' नामक पोन्न का एक और ग्रथ वताया है। किन्तु यह ग्रथ अभी तक उपलब्ध नही हुआ है।

रन्न

महाकवि रन्न मुधोळ के निवासी थे। इनका जन्म सौम्य सवत्सर (ई० ९४९) मे हुआ था। रन्न की माता का नाम अब्बलब्बे एव पिता का नाम जिनवल्ल-

भेन्द्र था। कवि के सहोदर दृढ़बाहु रेचण और मारय्य थे। जक्किक एव शाति उनकी पत्नी थी। पुत्र का नाम राय और पुत्री का नाम अत्तिमब्बे था। रन्न के पूज्य गुरु आचार्य अजितसेन थे। इनका यह परिचय स्वरचित 'अजितपुराण' के १२वें आश्वास मे मिलता है। महाकवि रन्न की प्रतिभा का विकास अत्तिमब्बे* और चाउण्डराय सदृश सामत तथा माण्डलिको के आश्रय मे हुआ। अत मे तैलप चक्रवर्ती (ई० ९७३-९९७) और युवराज सत्याश्रय के आश्रय मे रहते हुए उसके प्रभुत्व का सिक्का जम गया। इस बात को कवि रन्न ने स्वय कहा है।

मालूम होता है कि महाकवि रन्न को कविरत्न, कविचक्रवर्ती, कविकुजरा-कुश, उभयकवि, कवितिलक आदि की उपाधियाँ प्राप्त थी। इन्होने अपने से पूर्व के कन्नड कवियो मे महाकवि पप और पोन्न को स्मरण किया है। रन्न का कहना है कि कवियों मे जैनधर्म को दीप्त करनेवाले पप पोन्न और रन्न ये तीन ही 'रत्नत्रय' के नाम से विख्यात हैं। यह आत्मश्लाघा मात्र नही है, कवि की कविकर्म कुशलता का भी परिचायक है। अन्यत्र कवि कहता है कि 'अपने को रत्न का पारखी माननेवाला शेषनाग के फण मे विद्यमान अनर्घ्य रत्न को और काव्यसमीक्षक के नाते रन्न के बहुमूल्य काव्य-रत्न को परखने का दुस्साहस न करें।' कवि का दावा है कि 'इससे पूर्व कोई कवि वाग्देवी के भाडार की मुहर नहीं तोड सका था। रन्न ने ही अपनी सरस रचनाओ के द्वारा वाग्देवी के भाडार की मुहर तोड दी, अर्थात् सरस्वती की सपदा का स्वामी बना।' कवि का यह कोई प्रलाप नही है। बल्कि उसकी अद्भुत काव्य-साधना का फल है।

महाकवि रन्न की प्रारभिक शिक्षा-दीक्षा लोकादित्य की प्राचीन राजधानी, वर्तमान धारवार जिलांतर्गत बकापुर मे आचार्य अजितसेन की देखरेख में हुई थी। कन्नड और सस्कृत दोनो में उस वक्त उपलब्ध सारे ग्रथ रन्न को उपलब्ध थे। दानचिंतामणि अत्तिमब्बे और चाउण्डराय इन दोनो की कृपा से रन्न को पर्याप्त वैभव एव यश प्राप्त हुआ। अत मे पूर्वोक्त चालुक्य नरेश तैलप एव उसके सुपुत्र सत्याश्रय के आस्थान मे वह विशेष सम्मानित हुआ। जैनो के प्रसिद्ध तीर्थ श्रवणबेळगोळ के छोटे पर्वत पर एक चट्टान है, जिस पर 'श्रीकवि-

---

*इसके विषय मे विशेष जानने के लिये 'चदाबाई अभिनन्दन ग्रंथ' में प्रकाशित 'दानचिन्तामणि अत्तिमब्बे' शीर्षक मेरा लेख देखें।

रत्न' ये पाँच अक्षर खुदे मिलते हैं। ऐसी किंवदन्ती है कि रन्न ने ही इन अक्षरो को खोदा है। यह बहुत संभव है क्योकि महाकवि रन्न श्रवणबेळगोळ बराबर जाता रहा। चक्रवर्ती के योग्य कोश, कठिका, श्वेतपत्र, सिंहासन आदि कविचक्रवर्ती रन्न को अपने आश्रयदाता सत्याश्रय से सानन्द प्राप्त था। नागचन्द्र (ई० ११००), नयसेन (ई० ११९२), पार्श्व (ई० १२०५), मधुर (ई० १३८५) और मगरस इन कवियो ने रन्न की बडी प्रशसा की है।

रन्न की दो प्रधान रचनाएँ हैं। एक 'अजितपुराण' (ई० ९९३) तथा दूसरा 'साहसभीमविजय' या 'गदायुद्ध'। अजितपुराण द्वितीय तीर्थंकर अजितनाथ की पुनीत गाथा है। यह २२ आश्वास का चम्पूकाव्य है। इसमे व्यर्थ का वृत्त नही आया है। इसकी रचना महाकवि रन्न ने अत्तिमब्बे की प्रेरणा से की। ग्रथ मे अत्तिमब्बे का इतिवृत्त विस्तार से देते हुए उसकी दानशीलता का गुणगान किया गया है। इसे 'काव्यरत्न' या 'पुराणतिलक' भी कहा गया है। इसमे भवावलियो की जटिलता नही है। चूंकि यह एक जैन पुराण काव्य है, इसलिए लौकिक काव्य गदायुद्ध की तरह पात्रनिरूपण, सन्निवेशरचना आदि मे कवि स्वतत्र नही है। फिर भी भक्ति, ज्ञान और वैराग्य के पावन चित्रण के द्वारा रन्न ने अपने अद्भुत कविता-सामर्थ्य को सुन्दर ढग से व्यक्त किया है। शैली में सौंदर्य है। कवि उभय भाषाओ मे पण्डित होता हुआ सगीत एव नाट्यशास्त्र मे भी प्रवीण मालूम होता है। एतदर्थं जिनशिशु का जन्माभिषेक आदि प्रसग सर्वथा पठनीय हैं। अजितपुराण के तिलकप्राय सन्निवेश के द्वितीयाश्वास में सुसीमानगर के राजा विमलवाहन का वैराग्य प्रकरण आदि कई मर्मस्पर्शी ऐसे स्थल हैं जो सहृदय पाठक को मोह लेने के लिए पर्याप्त हैं। अयोध्यानगरी से अजितनाथ तपस्या के लिए चल पडते हैं तो रनिवास मे गहरा अवसाद छा जाता है और रनिवास की रानियाँ गुणनिधि, भुवनपूजित अजितनाथ का नाम रटते-रटते महल से बाहर आ जाती हैं। यह बडा करुणाप्रधान प्रसग है। अपितु तीर्थंकर के समकालीन सगरचक्रवर्ती का प्रकरण भी बडा तलस्पर्शी है।

सगर के साठ हजार पुत्र थे। सतानमोह सगर की सबसे बडी दुर्बलता थी। सगर का यह मोह दूर कर ससार की असारता का उसे बोध हो, इस उद्देश्य से रन्न कवि ने एक नई उद्भावना की है। एक बार पिता के पास लडके आये और काम करने की इच्छा प्रकट की। पिता बोले—जाओ, खाओ-पिओ और मौज करो। लडको को पुरुषार्थहीन यह जीवन पसन्द न आया।

सगर सम्राट ने यह जानकर आदेश दिया कि कैलास पर्वत पर भरत सम्राट् ने रत्ननिर्मित प्रतिमाएँ बनाकर रखी हैं। वे लोक के मानवो की दृष्टि में न आए, ऐसा कोई उपाय सोचो। सगर को सचेत करनेवाला उसका मित्र चेतन मणिकेतु नामक दृष्टिविषसर्प का रूप धारण कर आया और भगीरथ को छोडकर बाकी सबको मार डाला। पीछे वह ब्राह्मणवेश मे राजमहल के समीप आया और शोर मचाने लगा। जब उससे शोर का कारण पूछा गया तो जवाब मे उसने कहा कि कई मनौतियो के मानने के फलस्वरूप पैदा हुआ उसका इकलौता बेटा यमलोक सिधार गया। अत मैं तुम्हारे पैर पडने आया हूँ। मेरे लिए मृत्यु या आश्रय तुम्ही प्रदान कर सकते हो। सगर उस ब्राह्मण को सात्वना देते हुए बोले, "भाई! तुम ऐसे घर से तिनका और आग ले आओ जहाँ मृत्यु की छाया तक न पडी हो। मैं तुम्हारे बेटे को बचा दूँगा।" कपटी ब्राह्मण गया और लौटकर बोला कि ऐसा एक भी घर नही मिला। इस पर सगर ने उस ब्राह्मण को मृत्यु की अनिवार्यता की बात इस तरह समझाई, "यमराज के पजे से कौन बचा है? देवता, मानव, राक्षस, पशु इन सबका सर्वनाश उसका खेल है। शवयात्रा के अवसर का जो बाजा बजता है, वह यम का विजयघोष है। चिता धूम उसकी विजयपताका है। परिजनों का विलाप उसकी सफलता का प्रतीक है। यम की राजसत्ता के ये ही संकेत हैं।" ये सारी बातें सुनने के बाद ब्राह्मण बोला, "यह धर्मचर्चा केवल मेरे लिए है या आपके जीवन मे भी इसका कोई महत्त्व है?" सगर ने तुरन्त उत्तर दिया, "इसका आचरण मैं पहले करूँगा।" तुरन्त ब्राह्मण के मुँह से बात निकली, 'तुम्हारे ६० हजार पुत्र जीवित नही रहे।' भगीरथ ने भी इस बात की पुष्टि की। यह शोकवार्ता सुन कर परिजनो और रनिवास मे क्रंदन मच गया। माताओ ने पुत्रो की प्राणभिक्षा माँगी और वधुओ ने पतिभिक्षा माँगी। यद्यपि सगर शोकसागर मे डूबने-उतराने लगे, परन्तु रचमात्र भी विचलित न हुए। उसी क्षण उन्होने ससार से विरक्त होकर भगीरथ को राज्य का उत्तराधिकारी बनाया और तपस्या के लिए चल पडे। निर्वेद की बडी ही गभीर व्यजना इसकी विशेषता है। विद्वानो का कथन है कि अजितपुराण मे काव्यसौन्दर्य का अभाव नही है। फिर भी पपरचित आदिपुराण की भव्यता यहाँ दृष्टिगोचर नहीं होती।

रन्न का लौकिक काव्य गदायुद्ध या साहसभीमविजय कन्नड का अपूर्व 'कृतिरत्न' माना गया है। कवि ने इसमे आश्रय दाता सत्याश्रय नरेश का

गुणगान किया है। पपभारत के २३वें आश्वास मे वर्णित 'गदासौप्तिक' पर्व की कथा इसकी विषयवस्तु है। कवि ने इस रचना मे समूचे महाभारत की प्रधान घटनाओ का स्मरण दिलाया है। नाटकीय शैली का उत्कर्ष इसका बहुत बडा आकर्षण है। सवादयोजना, कार्यव्यापारशृंखला और विदूषक पात्र के निरूपण की दृष्टि से गदायुद्ध अद्भुत रचना है। इस प्रकार की विदूषक की पात्रयोजना अन्य किसी भी काव्य मे नही मिलती है।

इस रचना का नायक भीम है। दुर्योधन प्रतिनायक है। पपभारत में कर्ण पर जो सहानुभूति उमड आती है, वही गदायुद्ध के दुर्योधन पर सहसा उत्पन्न होती है। महाभारत के युद्ध का अतिम दिन है। दुर्योधन रणक्षेत्र मे कदम बढा रहा है। उसे अपने पक्ष के समस्त वीर धराशायी दिखाई दे रहे हैं। प्रत्येक को देख देख उसका कलेजा मुँह को आता है। कर्ण और दु शासन इन दोनो को देखकर वह हतचेता हो जाता है। अभिमन्यु का शव देखते ही उसके नयनो के सामने उस वीर बालक की मूर्ति सजीव हो उठती है। उसके मन मे यह विचार आता ही नही कि अभिमन्यु शत्रुपक्ष का है। अनायास उसके मुँह से निकल पडता है, "तुझे जन्म देनेवाली कोई स्तन शोभित स्त्री नही। वीरजननी नाम सार्थक करनेवाली साध्वी है।" दुर्योधन मृत अभिमन्यु से अनुरोध करता है, "अद्वितीय पराक्रमी अभिमन्यु! यह सभव नही कि तुम-सा कोई दूसरा पराक्रमी हो। मेरा यही अनुरोध है कि मृत्युरूप मे तेरे पौरुष का थोडा-सा ही हिस्सा मुझे मिल जाय।" यही उदात्त भाव उपपाण्डवो की हत्या की सूचना पाने के बाद व्यक्त हुआ है। अतिम क्षण मे दुर्योधन को सतुष्ट करने के लिए अश्वत्थामा उपपाण्डवो के मस्तक लाता है तो दुर्योधन बडा दु खी होता है और अश्वत्थामा को स्पष्ट कह देता है कि शिशुहत्या का पाप तुम्हारे सिर पर आयेगा। दुर्योधन के इस लोकोत्तर गुणो को लक्ष्य कर विद्वान् आलोचक उसे 'महानुभाव' मानने लगे हैं। आलोचक उसे 'साहस का धनी' और 'छलदकमल्ल' भी कहा करते हैं।

दुर्योधन रणक्षेत्र की ओर बढ रहा है। रास्ते मे धृतराष्ट्र और गाधारी दोनो उससे मिलने आ रहे है। धृतराष्ट्र सुलह करने पर आग्रह करते हैं और आधा राज्य धर्मराज को देने के लिए जोर लगाते हैं। गाधारी लडाई बन्द करने हेतु उसे खूब समझाती है। वह इतने से ही सात्वना प्राप्त कर लेती है कि जो गये लौट नही सकते। किन्तु दुर्योधन ही बच गया, चलो अच्छा हुआ। इस प्रकार वह भाग्य से समझौता करने को तैयार है। परन्तु दुर्योधन पर

माता-पिता की आर्त्तवाणी का कोई प्रभाव नही पडा। उसका एक भी भाई जीवित नही रहा। उधर धर्मराज की यह प्रतिज्ञा है कि मेरा कोई भाई मारा जावेगा तो मै आग मे कूद पडूंगा। दुर्योधन की बडी दयनीय दशा है। वह माता-पिता से कहता है, "आप मेरे जीवित रहने की बात पर कोई भरोसा न रखें। अपने भाइयों पर जो बीता है वही मेरे लिए भी तय मानिये।"

कभी-कभी वह बडा उत्तेजित हो जाता है और कहने लगता है—"प्यारे भाई कर्ण! अर्जुन से तुम्हें मैं छीन लूंगा। प्यारे भाई दु शासन! भीम का पेट चीरकर तुम्हें पा लूंगा। इन दोनो का शिकार कर लूं तो पीछे निर्दोषी धर्मराज के साथ जीवन बिताने की समस्या अपने आप हल हो जायगी।" दु ख की तीव्रता उसके मुंह से कहला देती है, "क्या मैं ही आपका पुत्र हूं, धर्मराज नहीं? आप उसके साथ जीवनयापन कीजिये, मेरी कोई चिन्ता न कीजिये।" दुर्योधन के मन की उदारता का यह सुन्दर प्रभाव है।

बडी धूमधाम से चलनेवाले दुर्योधन को एकाकी और उदास आते देख भीष्मपितामह द्रवित होते हैं। पितामह इस अवस्था मे समझौते की चर्चा छेडते हैं। दुर्योधन को प्रस्ताव जँचता नही है। वह पितामह से यह जानने के लिए उत्सुक है कि युद्ध मे शत्रु को परास्त कैसे किया जाय। वह पितामह से निवेदन करता है, "मैं राज्य के लिए लालायित नही हूं। मैं प्रण का पालन करने के लिए अधीर हूं। पाण्डवो के साथ मैं राज्य का उपभोग नही कर सकता। यह राज्य उस दशा मे श्मशान से भिन्न नही होगा। कर्ण की हत्या के लिए उत्तरादायी यह राज्य भोगने योग्य नहीं है। मैं किसके लिए यह राज्य सँभालूं? न आप हैं, न द्रोणाचार्य रहे, न कर्ण, न दु शासन ही है। कौन मेरा वैभव देखकर प्रसन्न होगा? इतना सुनकर भीष्म निरुत्तर हो जाते हैं।

पितामह दुर्योधन को सलाह देते हैं कि वैशम्पायन सरोवर मे सारा दिन बिताकर दूसरे दिन बलराम के साथ मिलकर लडाई जारी रखी जाय। दुर्योधन यह सलाह मानकर चला जाता है। परन्तु बार-बार समझौते की चर्चा सुनकर वह बडा खिन्न होता है। वह बडो की सलाह मानकर सरोवर में रह तो जाता है। किन्तु भीम की ललकार सुनते ही सर्पध्वजी दुर्योधन रोष के मारे जल मे रहने पर भी उबलने लगा। प्रलयकालीन रुद्र की भाँति वह धरती का अन्तर भेदते हुए बाहर निकल पडा और भीम से जमकर लडा तथा स्वर्ग सिधारा। इस प्रकार गदायुद्ध सत्याश्रय का स्तुतिगायन तो है ही, दुर्योधन की

महिमा का भी सुन्दर चित्रण करनेवाला महाकाव्य है। वस्तुतः रन्न का प्रबल यश गदायुद्ध काव्य से ही अमर हुआ है। इसमे सन्देह नही है कि रसिक वीर रन्न ने इसमे वाग्देवी के भाण्डार की मुहर अवश्य तोडी है। चम्पूरूप इस काव्य मे २० आश्वास हैं। महाकवि रन्न ने पप का शिष्य बनकर पप-भारत के २३वें आश्वासातर्गत भीम-दुर्योधन सम्बन्धी गदायुद्ध को ही काव्य की वस्तु बनाकर एक सर्वश्रेष्ठ काव्य की रचना की है। कवि का कहना है कि साहस-भीम, अकलकचरित आदि उपाधियो के स्वामी सत्याश्रय को कथानायक बना कर भीम के साथ उसकी तुलना करते हुए मैंने इस काव्य की रचना की है। युद्धान्त मे पप अपने काव्य मे जहाँ अर्जुन एव सुभद्रा का पट्टाभिषेक करता है, वहाँ रन्न अपनी रचना मे भीम और द्रौपदी का पट्टाभिषेक करता है। रन्न के इस महाकाव्य मे एक वैशिष्ट्य और है। वह है, सम्पूर्ण काव्य मे दृष्टि-गोचर होनेवाली नाटकीयता। यहाँ पर भट्टनारायण का वेणुसहार और भास का ऊरुभग इन दोनो का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। फिर भी श्री बी० ए० श्रीकठय्य का कहना है कि भट्टनारायण और भास से महाकवि रन्न किसी भी दृष्टि से कम नही हैं। बल्कि रन्न उनसे भी बढकर है। गदायुद्ध का एक वैशिष्ट्य यह है कि उसमे सिंहावलोकन-क्रम से भारतातर्गत कथाओ को पात्रो के मुख से ही कहलाया गया है।

भीमसेन की प्रतिज्ञा, दुर्योधन का प्रलाप, भीम-दुर्योधन की पारस्परिक कटूक्ति आदि सन्दर्भो मे महाभारत की कथा का मुख्याश सुचारु रूप से निरूपित है। रन्न की शैली, पात्रों का चरित्रचित्रण, रसपुष्टिविधान, सन्नि-वेश निर्माण आदि विशेष गुणो के जिज्ञासु एक बार "रन्नकविप्रशस्ति" नामक विद्वानो के विमर्शात्मक लेख सग्रह को अवश्य पढें। रन्न प्रतिभाशाली महा-कवि हैं। उनके द्वारा चित्रित दुर्योधन[1] का पात्र कन्नड साहित्य मे अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। प्रतिनायक दुर्योधन का पतन दुर्भाग्यवश अनिवार्य ही था। फिर भी उसमे निरूपित कतिपय उदात्त गुण इन्द्रजाल की तरह हमे दुर्योधन के प्रति सहृदय बना देते हैं। अन्त में कवि ने समयोगालकार मे निबद्ध एक सुन्दर गीत द्वारा यह भाव व्यक्त किया है, 'इधर मर्त्यलोक मे कुरुकुलार्क अस्त हुआ तो उधर आकाश मे अर्क भी अस्त हुआ।'

---

१ विशेष के लिए 'प्रेमी अभिनन्दन ग्रथ' मे प्रकाशित 'महाकवि रन्न का दुर्योधन' शीर्षक मेरा लेख देखें।

इस युग के अन्य कवियों में चावुण्डराय, नागवर्म, शांतिनाथ, नागचन्द्र, नयसेन, ब्रह्मशिव, कर्णपार्य, वृत्तविलास आदि उल्लेखनीय हैं।

चावुण्डराय

चावुण्डराय ब्रह्मक्षत्रियवंशोद्भव हैं। इनके गुरु आचार्य अजितसेन हैं। ये गंगकुलचूडामणि राचमल्ल (ई० ९७४–९८४) के मन्त्री एवं सेनानी थे। यह सर्वविदित है कि श्रवणबेल्गोल में गोम्मटेश्वर की प्रतिमा प्रतिष्ठापित करने का श्रेय चावुण्डराय को ही है। समरधुरंधर, वीरमार्तण्ड, प्रतिपक्ष-राक्षस आदि अनेक उपाधियों से विभूषित चावुण्डराय बड़े धर्मप्रेमी और उदार थे। रन्न कवि के आश्रयदाता के रूप में भी इनका बड़ा नाम था। इन्होंने 'त्रिषष्टिलक्षण महापुराण' नामक गद्यकाव्य की रचना की। 'वड्डाराधने' की प्राप्ति से पहले इसी ग्रन्थ को कन्नड का प्रथम गद्यकाव्य माना जाता था। यह ग्रन्थ 'चावुण्डरायपुराण' के नाम से भी विख्यात है। इसमें तीर्थंकर, चक्रवर्ती आदि ६३ शलाकापुरुषों की गाथाओं का वर्णन है। यह गुणभद्र-विरचित उत्तरपुराण पर आधारित रचना है।

प्रत्येक चरित्र के आदिमंगलस्वरूप एक-एक पद्य को छोड़कर चावुण्डराय-पुराण एक शुद्ध गद्यग्रन्थ है। यह प्राचीन कन्नड गद्यरचना की एक बहुमूल्य कृति है। इसमें चावुण्डराय ने मूल कथावस्तु में किसी भी प्रकार का अन्तर नहीं आने दिया है। इसका मुख्य कारण कवि की धार्मिक दृष्टि ही मालूम होती है। इस पुराण में कवि को स्वप्रतिभा और काव्यशक्ति को प्रदर्शित करने की स्वतन्त्रता नहीं होने से वड्डाराधने में जो वैशिष्ट्य है, वह वैशिष्ट्य इसमें नहीं आ पाया है। चावुण्डरायपुराण में धार्मिकता तो है किन्तु काव्यधर्म का अभाव है। फिर भी यह पुराण उस काल की गद्यशैली का प्रतिनिधित्व करता है।

इसमें सन्देह नहीं है कि इसके कई पद्य बहुत ही सरल, ललित और भक्ति-पूर्ण हैं। यह सम्भव है कि जैन पुराणकथाओं से अपरिचित व्यक्ति को चावुण्ड-रायपुराण विशेष रुचिकर प्रतीत न हो। यद्यपि इसमें भवावलियाँ, निर्वेग आदि पुराणसहज बातों की अधिकता है, फिर भी विद्युन्नन्दि-विद्यानन्द का युद्ध आदि कतिपय प्रकरण विशेष चित्ताकर्षक हैं। ये * प्रकरण चावुण्डराय के कथन कौशल के स्पष्ट साक्षी हैं। भाषाशास्त्र की दृष्टि से चावुण्डरायपुराण का गद्य कम महत्त्वपूर्ण नहीं है।

चाउण्डराय ने संकृत में भी एक ग्रथ रचा है। इस ग्रथ का नाम 'चारित्र-सार' है। इसमे अणुव्रत, शिक्षाव्रत, संयम, भावना, परीषहजय, ध्यान, अनु-प्रेक्षा आदि आचार धर्म का वर्णन है। चाउण्डराय बडा उदार था। इनके द्वारा निर्मित अपरिमित व्ययसाध्य, सर्वांगसुन्दर पूर्वोक्त गोम्मटमूर्ति एव चन्द्रगिरि मे विराजमान कलापूर्ण जिनालय उसकी उदारता के ज्वलन्त प्रमाण हैं। चन्द्रगिरि मे विद्यमान यह जिनमन्दिर उस पर्वत पर स्थित सभी मन्दिरो मे मनोज्ञ है। ऊपर कहा जा चुका है कि यही चाउण्डराय महाकवि रन्न के आश्रयदाता थे।[1] स्वबन्धु एव स्वजन्मभूमि को त्यागकर विद्याध्ययन की पिपासा से आगत रन्न के विद्याध्ययन की सम्पूर्ण व्यवस्था चाउण्डराय ने ही की थी।

चाउण्डराय कवि ही नही अपितु एक योद्धा भी थे। विभिन्न अवसरो पर प्राप्त इसकी समरधुरन्धर, वीरमार्तंड, रणरंग सिंह प्रतिपक्षराक्षस, सुभट चूडामणि आदि उपाधियाँ इस बात की पुष्टि करती हैं। इन बातो का विशद वर्णन विंध्यगिरि के वर्तमान १०९ (२८१) वें शिलालेख तथा चाउण्डराय-पुराण मे उपलब्ध होता है। चाउण्डराय को उपर्युक्त उपाधियो के अतिरिक्त सम्यक्त्वरत्नाकर, शौचाभरण, सत्ययुधिष्ठिर, गुणरत्नभूषण आदि धार्मिक गुणो को व्यक्त करनेवाली भी उपाधियाँ प्रदान की गई। ये सभी उपाधियाँ कवि के सदाचारपूर्ण धार्मिक जीवन का दिग्दर्शन कराती हैं। चाउण्डराय राय, अण्ण आदि गौरवपूर्ण नामो से भी पुकारा जाता था।[2] चाउण्डराय का आश्रय-दाता गगकुलचूडामणि, जगदेकवीर आदि उपाधियो से समलकृत पूर्वोक्त राचमल्ल या राजमल्ल (चतुर्थ) गगवंशी नरेश मारसिंह का उत्तरा-धिकारी था।

मारसिंह के शासनकाल मे भी चाउण्डराय मन्त्री एवं सेनापति के पद पर आसीन थे। मारसिंह भी जैनधर्म के प्रति दृढ श्रद्धालु थे। इन्होंने अनेक जिनमदिरो एव मानस्तंभो का निर्माण करा कर अन्ततः बकापुर मे आचार्य

---

१ विशेष के लिये 'जैन सन्देश' २० शोधाक (मे प्रकाशित) 'महाकवि रन्न को चाउण्डराय का आश्रयदान' शीर्षक मेरा लेख देखें।

२ विशेष जिज्ञासु 'जैन सिद्धान्त-भास्कर' मे प्रकाशित 'वीर मार्तण्ड चाउण्डराय' शीर्षक मेरा लेख देखें। (भाग ६, किरण ४,)।

अजितसेन के पादमूल में समाधिमरणपूर्वक शरीरत्याग किया।[1] प्रारम्भ से ही गगराज्य का जैनधर्म से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। श्रवणबेळगोळ के शिलालेख नं० ५४ (६७) एवं गगवश के अन्यान्य दानपत्रो से निर्विवादरूप से यह सिद्ध है कि मुनिसिंहनन्दी ही गगवश के सस्थापक थे। इसे गोम्मटसारवृत्ति के रचयिता अभयचन्द्र त्रैविद्यचक्रवर्ती भी स्वीकार करते हैं।

श्रीधराचार्य

यह वेलुवल नाडान्तर्गत नरिगुन्द के निवासी थे। इन्होंने अपने को 'विप्र-कुलोत्तम' बतलाया है। अभी तक तो इनका 'जातकतिलक' नामक एक ज्योतिष ग्रन्थ ही उपलब्ध हो सका है, जो कि प्रकाशित हो चुका है। यद्यपि जातक तिलक के अन्तिम पद्य से पता चलता है कि इन्होने 'चन्द्रप्रभचरित' भी रचा था। परन्तु यह ग्रन्थ अभी तक प्राप्त नही हुआ है। कवि का कहना है कि विद्वानो ने मुझसे कहा कि 'अभी तक कन्नड मे किसी ने ज्योतिष ग्रन्थ नही लिखा है, इसलिए तुम जातकतिलक अवश्य लिखो।' इस प्रकार विद्वानो की प्रेरणा से ही मैंने जातकतिलक की रचना की है। इससे सिद्ध होता है कि कन्नड में ज्योतिष सम्बन्धी ग्रथ लिखने वालों में श्रीधराचार्य प्रथम हैं। इस बात की पुष्टि बाहुबलि (लगभग १२६- ई० की 'नागकुमार-कथा' से भी होती है। कन्नडकविचरिते के मान्य लेखक के मत से श्रीधराचार्य का काल ई० सन् १०४९ एव शा० शक ९७१ है।

श्रीधराचार्य को गद्यपद्यविद्याधर और बुधजनमित्र ये दो उपाधियाँ प्राप्त थीं। इन्होंने अपने को विधुविशदयशोनिधि, काव्यधर्मजिनधर्मगणितधर्ममहाम्भोनिधि, बुधमित्र, निजकुलाम्बुजाकरमित्र, रसभावसमन्वित, सुभग, अखिलवेदी आदि अनेक विशेषणो से सबोधित किया है। ऊपर कहा जा चुका है कि जातकतिलक एक ज्योतिष ग्रथ है। यह कद वृत्तो में लिखा गया है। इसमे २४ अधिकार हैं। यद्यपि कवि ने अपने ग्रन्थ की उत्कृष्टता कई पद्यो मे बतलाई है तथापि स्थानाभाव के कारण उन पद्यों को यहाँ पर उद्धृत करना अपेक्षित नही है। श्रीधराचार्य ने ज्योतिष का प्रयोजन इस प्रकार बतलाया है "भवबद्ध शुभाशुभ कर्मविपाक का फल जानने के लिए ज्योतिर्ज्ञान अधेरी कोठरी मे रखी हुई वस्तुओ को स्पष्ट दिखाने वाले प्रदीप के समान है।'

---

१ विशेष जिज्ञासु 'सन्मति सन्देश' (दिल्ली), वर्ष १०, अक ७, में प्रकाशित 'गंगनरेश मारसिंह का समाधिमरण' शीर्षक मेरा लेख देखें।

जातकतिलक एक सुन्दर कृति है। कवि ने विवेच्य विषयो को सरल शैली मे सुन्दर ढग से लिखा है। यह मैसूर राजकीय पुस्तकालय की ओर से प्रकाशित हो चुका है। ग्रथ हिन्दी मे अनुवाद करने योग्य है।[१]

दिवाकरनन्दि

इन्होने उमास्वाति के तत्त्वार्थसूत्र की कन्नडवृत्ति लिखी है। इस बात का उल्लेख हमे नगर के ५७ वें अभिलेख मे उपलब्ध होता है। दिवाकरनन्दि के गुरु भट्टारक चन्द्रकीर्ति थे। मालूम होता है कि दिवाकरनन्दि 'सिद्धान्त रत्नाकर' नामक बहुमूल्य उपाधि से विभूषित थे। नगर के ५७वें एव ५८वें अभिलेखो मे इनकी बडी प्रशसा की गई है। उपर्युक्त अभिलेखो के लेखक मल्लिनाथ इन्ही के प्रशिष्य थे। दिवाकरनन्दि के शिष्य सकलचन्द्र और सकल-चन्द्र के शिष्य मल्लिनाथ थे। मल्लिनाथ के पिता पट्टणस्वामी नोक्क भी दिवाकरनन्दि के ही शिष्य थे। उक्त शिलालेखो मे पट्टणस्वामी नोक्क के द्वारा प्रदत्त दान का विस्तृत उल्लेख है।

उपर्युक्त शिलालेख चालुक्य शासक त्रैलोक्यमल्ल के शासनकाल मे तथा वीर शातार के समय मे लिखे गये थे। ५८वें शिलालेख मे उसका लेखनकाल भी अकित है, यह शा० शक ९८४ (ई० सन् १०६२) मे लिखा गया था। स्व० आर० नरसिहाचार्य ने अपने 'कविचरिते' मे दिवाकरनन्दि का जो समय निर्धारण किया है, वह इसी शिलालेख के आधार पर किया होगा। इसमे सन्देह नहीं है कि दिवाकरनन्दि एक सुयोग्य विद्वान् थे। ये केवल कन्नड के ही विद्वान् नहीं थे, अपितु सस्कृत के भी विद्वान् थे। इन्होने अपनी तत्त्वार्थ-वृत्ति का मगलाचरण सस्कृत मे निम्न प्रकार किया है—

'नत्वा जिनेश्वर वीरं वक्ष्ये कर्णाटभाषया।
तत्त्वार्थसूत्रमूलार्थं मंदबुद्धयनुरोधन.॥

दिवाकरनन्दि की उक्त तत्त्वार्थवृत्ति के अन्त मे एक गद्य है, जिससे ज्ञात होता है कि इनके गुरु केवल पूर्वोक्त भट्टारक चन्द्रकीर्ति ही नहीं थे, वल्कि पद्मनन्दि सिद्धान्तदेव भी थे। इस वृत्ति मे वृत्तिकार दिवाकरनन्दि ने अपनी इस वृत्ति का लघुवृत्ति के नाम से ही उल्लेख किया है। साथ ही साथ इस गद्य मे दिवाकरनन्दि ने अपने को 'आसाधितसमस्तसिद्धातामृतपारावार'

---

१ विशेष जिज्ञासु 'जातकतिलक'—'जैन सदेश' (शोधाक २८), भाग-२७, स० ४८, मथुरा–१९६४, मे प्रकाशित मेरा लेख देखें।

बतलाया है। उमास्वातिकृत तत्त्वार्थसूत्र मे दस अध्याय हैं इसलिए वृत्ति में भी दस ही प्रकरण रखे गये हैं। वस्तुत दिवाकरनन्दि विशुद्ध चरित्र एवं सद्गुणों के धारक, योगी श्रेष्ठ, जैनधर्म के प्रति दृढ़ श्रद्धालु और देशीगण के भूषणरूप एक प्रौढ विद्वान् भी हैं।

शातिनाथ

इन्होंने 'सुकुमारचरिते' नामक चम्पूकाव्य लिखा है। यह बात शिकारिपुर के १३६वें शिलालेख मे भी अंकित है। शिलालेख शा० शक ९९० (कीलक सवत्सर) मे लिखा गया है। कवि शान्तिनाथ भुवनैकमल्ल (ई० सन् १०६८-१०७६) के सामन्त लक्ष्म नृप के मन्त्री थे। इनके गुरु व्रति वर्धमान, पिता गोविन्दराज, अग्रज कन्नपार्थ, अनुज वाग्भूषण और रेवण थे। नृप लक्ष्म इनके स्वामी थे। इन्होंने अपने को दण्डनाथप्रवर, परमजिनपदाम्बोजिनीराजहस, सरस्वतीमुखमुकुर, सहजकवि, चतुरकवि, निस्सहायकवि वताया है। ये इनकी उपाधियाँ मालूम होती है। शान्तिनाथ नृप लक्ष्म के मन्त्री ही नही थे, वनवसे के अर्थाधिकारी, कार्यधुरधर और तद्राज्यसमुद्धारक भी थे। पूर्वोक्त शिलालेख के आधार से कवि शान्तिनाथ का काल ई० सन् १०६८ निश्चित किया गया है। शान्तिनाथ के आदेश से नृप लक्ष्म ने वलिग्राम के शान्तिनाथ जिनालय का शिलान्यास किया था। पूर्वोक्त शिकारिपुर के शिलालेख मे कवि शान्तिनाथ की वडी स्तुति की गई है।

सुकुमारचरिते मे १२ आश्वास हैं। तिर्यगुपसर्गों का वर्णन करनेवाली भवावलियो से युक्त यह पौराणिक कथा मनोहर एव मार्मिक है। विद्वानो की मान्यता है कि शान्तिनाथ ने किसी अनिर्दिष्ट प्राकृत मूल से वड्डाराधना मे आगत 'सुकुमारस्वामिकथा' से ही इस ग्रन्थ की कथावस्तु ली होगी।

संस्कृत और कन्नड मे उपलब्ध अन्यान्य सुकुमारचरित्र शान्तिनाथ के इस सुकुमारचरित्र के वाद की रचना हैं। इस काव्य मे सूरदत्त तथा यशोभद्रा के पुत्र सुकुमार का चरित्र सुन्दर ढग से वर्णित है। सुकुमार यशोभद्राचार्य के उपदेश से जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त कर विरक्त हो जाता है तथा उक्त आचार्य से ही दीक्षा ग्रहण कर अन्त मे मोक्ष प्राप्त करता है। विद्वानो का मत है कि शान्तिनाथ का यह काव्य महाकाव्य रन्न, पोन्न आदि के काव्यो से निम्न स्तर का नही है।

वस्तुत शान्तिनाथ एक प्रौढ कवि थे। अपनी प्रतिज्ञानुसार वे इस काव्य-

रचना से कृतकृत्य हुए हैं। कवि ने अपनी कृति में पारिभाषिक शब्दों की अपेक्षा सुलभ शब्दो का ही प्रयोग अधिक किया है। काव्य का वर्णन हृदयगम एव सजीव है। पात्र-रचना मे कवि ने अपनी कुशलता का अच्छा परिचय दिया है। इस काव्य का एक और वैशिष्ट्य है इसका कथानिरूपणक्रम। इसमें सन्देह नही है कि नयसेन सदृश कथालेखको के लिए शान्तिनाथ मार्गदर्शक हैं। यद्यपि कवि शान्तिनाथ पर वड्डाराधने का प्रभाव रहा हो, इसकी बहुत कुछ सम्भावना है। 'सुकुमारचरिते' मे वातावरण का निरूपण बडा ही स्वाभाविक है। यह काव्य शिवमोग्ग के कर्णाटकसघ की ओर से प्रकाशित हो चुका है।

नागचन्द

इन्होंने अपनी रचनाओ मे अपने देश, काल और वश आदि के सम्बन्ध मे कुछ भी उल्लेख नही किया है। परिणामत इनके देश, काल और वश आदि के बारे मे इस समय निश्चित रूप से कुछ भी नही कहा जा सकता। श्री आर० नरसिंहाचार्य, श्री दत्तात्रेय वेन्द्रे आदि कतिपय विद्वानो की राय है कि विजयपुर अर्थात् वर्तमान बीजापुर नागचन्द्र का जन्मस्थल हो सकता है। इसका कारण यह बतलाया जाता है कि कवि ने स्वय लिखा है कि 'विजयपुर मे श्री मल्लिनाथ-जिनालय का निर्माण कराकर मैंने मल्लिनाथ पुराण की रचना की है।'

परन्तु श्री गोविन्द पै मजेश्वर इससे सहमत नहीं हैं। आप नागचन्द्र की कृतियो (पपरामायण तथा मल्लिनाथपुराण) के कतिपय पद्यो के आधार पर बनवासि या इसकी पश्चिम सीमा पर अवस्थित समुद्रतीरवर्ती किसी स्थान को कवि का जन्मस्थल अनुमान करते हैं (देखें—अभिनव पप में प्रकाशित उनका लेख)। गोविन्द पै का कहना है कि कोई भी जनश्रुति निराधार नहीं होती है। यदि यह बात यथार्थ है तो मानना पडेगा कि नागचन्द्र अपनी पूर्वावस्था मे चालुक्य चक्रवर्ती के महामण्डलेश्वर होय्सल विष्णुवर्धन की राजधानी द्वारसमुद्र मे जाकर कुछ समय तक रहे और वहाँ पर इन्होंने कवयित्री कति को समस्यायें दी थी। मल्लिनाथपुराण (आश्वास १, पद्य ४०) मे प्रतिपादित जिनकथा को नागचन्द्र ने प्रायः विष्णुवर्धन (ई० सन् १११०-१११५) के आस्थान मे ही रचा होगा।

जिस प्रकार इनके पूर्ववर्ती महाकवि रन्न प्रथमत. सायन्न के, बाद में महामण्डलेश्वर के और अत मे चालुक्य चक्रवर्ती के आस्थान में पहुँचे थे, उसी

प्रकार नागचन्द्र श्री विष्णुवर्धन के आस्थान से बीजापुर जाकर वहाँ के चालुक्य युवराज मल्लिकार्जुन के आस्थान में रहे होगे और लगभग ११२० ई० मे बीजापुर का शिलालेख लिखा होगा। बीजापुर के शिलालेख के पद्य ६ मे उल्लेखित मल्लिकार्जुन के प्रोत्साहन एव सहायता से ही कवि नागचन्द्र ने विजयपुर (बीजापुर) मे मल्लिदेव के सनाम मल्लिजिनेन्द्र का मन्दिर बनवाया होगा और वहीं पर 'मल्लिनाथपुराण' की रचना की होगी। सम्भवत ग्रथ समाप्त होने के पूर्व ही मल्लिकार्जुन स्वर्गवासी हो गया होगा और इसीलिए बाद मे उसके अनुज तृतीय सोमेश्वर के आस्थान मे रहकर कवि नागचन्द्र ने उपर्युक्त मल्लिनाथपुराण पूरा किया होगा।

मल्लिनाथपुराण के 'निजविभवोदय सफलमायत' नामक पद्य से ज्ञात होता है कि कवि नागचन्द्र काफी सपन्न था। इनके ग्रथो से ज्ञात होता है कि कवि को भारतीकर्णपूर, कवितामनोहर, साहित्यविद्याधर, चतुरकवि, जनास्थान-रत्नप्रदीप, साहित्य-सर्वज्ञ और सूक्तिमुक्तावतंस उपाधियाँ प्राप्त थी। नागचन्द्र के गुरु मुनि बालचन्द्र थे। परन्तु बालचन्द्र नाम के कई व्यक्ति हुए हैं। इसलिए इनमे कवि नागचन्द्र के गुरु मुनि बालचन्द्र कौन से थे, यह कहना कठिन है। श्री गोविन्द पै मजेश्वर का मत है कि श्रवणबेळगोळ के १५८वें शिलालेख मे अकित बालचन्द्र ही नागचन्द्र के गुरु होगे। किन्तु इस शिलालेख के बहुत से अक्षर जहाँ-तहाँ घिस गये हैं जिससे मुनि बालचन्द्र के सम्बन्ध मे विशेष कुछ भी ज्ञात नही होता हैं। दुर्भाग्य से शिलालेख में लेखनकाल भी नही दिया गया है।

फिर भी श्री गोविन्द पै का यह सुनिश्चित मत है कि नागचन्द्र के द्वारा अपने मल्लिनाथपुराण (आश्वास १, पद्य २०) एव पपरामायण (आश्वास १, पद्य १९) मे स्तुत स्वगुरु बालचन्द्र उपर्युक्त बालचन्द्र ही हैं (देखें, 'अभिनव पप' मे प्रकाशित गोविन्द पै का लेख)। कर्णपार्य (लगभग ११४० ई०) दुर्गसिह (लगभग ११४५ ई०), पार्श्व (ई० सन् १२०५), जन्न (ई० सन् १२०९), मधुर (ई० सन् लगभग १३८५), मगरस (ई० सन् १५०८) आदि मान्य कवियो ने नागचन्द्र की स्तुति की है। नागवर्म केशिराज आदि लक्षण ग्रथकारो ने भी उदाहरण के रूप मे नागचन्द्र के ग्रथों के पद्यो को उद्धृत किया है।

जन्मस्थान आदि की तरह कवि नागचन्द्र के काल के सम्बन्ध मे भी विद्वानो मे मतभेद है। 'कर्णाटककविचरिते' के विद्वान् लेखक श्री नरसिहा-

चार्य का अनुमान है कि नागचन्द्र का समय लगभग ११०० ई० में रहा होगा (कर्णाटककविचरिते, पृष्ठ ९९)। श्री गोविन्द पै का अनुमान है कि कवि नागचन्द्र का जन्म लगभग ई० सन् १०९० मे हुआ होगा। यह भी कहना है कि मल्लिनाथपुराण की रचना के समय कवि की अवस्था चालीस की और पंपरामायण की रचना के समय पचास की रही होगी। इस प्रकार उनका अनुमान है कि मल्लिनाथपुराण का रचनाकाल ई० सन् ११३० से पूर्व और पपरामायण का रचनाकाल ई० सन् ११४० रहा होगा ('अभिनवपप' में प्रकाशित उनका लेख देखें)। अत उपर्युक्त दोनो विद्वानो के मत से कवि नागचन्द्र का समय निस्सन्देह ग्यारहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध अथवा बारहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध रहा होगा। नागचन्द्र के कालनिर्णय के लिए अपने 'कविचरिते' मे आर० नरसिंहाचार्य ने जो प्रमाण उपस्थित किये हैं, उन पर कुछ अन्य प्रमाणो के साथ श्री गोविन्द पै ने अपने विमर्शात्मक लेख में विस्तार से चर्चा की है। इसमे संदेह नहीं है कि इस महत्त्वपूर्ण लेख मे इस सम्बन्ध में काफी प्रकाश डाला गया है।

यद्यपि देवचन्द्र (ई० सन् १८३८) के मत से 'जिनमुनितनय' और 'जिनाक्षर माला' भी नागचन्द्र की कृतियाँ हैं, परन्तु जिनमुनितनय के साहित्यिक प्रस्तुतीकरण को देखते हुए इसे नागचन्द्र की कृति मानना ठीक नही है क्योकि नागचन्द्र की रचनाओ से इसका बिलकुल मेल नही बैठता है। मालूम होता है कि यह कृति परवर्ती किसी सामान्य कवि द्वारा रची गई है। आर० नरसिंहाचार्य को प्राप्त जिनमुनितनय की ताडपत्रीय प्रति के अतिम पद्य में 'मुनिनूतनागचन्द्र' शब्द अकित है जिससे ज्ञात होता है कि जिनमुनितनय के रचयिता ने अपना नाम अभिनव नागचन्द्र रख लिया था। परन्तु जिनमुनितनय की मुद्रित प्रति मे उपर्युक्त 'कविनूतनागचन्द्र' के स्थान पर 'यतिविनूतनागचन्द्र' छपा हुआ है। मालूम होता है कि इसी से यह कृति नागचन्द्ररचित समझी गई है। जहाँ तक जिनाक्षरमाला का सबध है, इस नाम की एक लघुकाय कृति प० एच० शेष-अय्यगार ने सपादित कर मद्रास से प्रकाशित की है। इसके रचयिता महाकवि पोन्न हैं। सभवतः इसी नाम की दूसरी कृति नागचन्द्र द्वारा रची गई हो।

नागचन्द्र का दूसरा नाम अभिनव पप था। इनके उपलब्ध दो ग्रथो मे पहला मल्लिनाथपुराण और दूसरा पपरामायण है। पम्परामायण का अपरनाम रामचन्द्रचरितपुराण है। श्री गोविन्द पै, दत्तात्रेय वेन्द्रे आदि विद्वानो का मत है कि इनमे से पहले मल्लिनाथपुराण और बाद मे पप

रामायण की रचना को गयी थी। पहले ग्रथ का ग्रथप्रमाण गद्य-पद्य मिलाकर २०३१ है जबकि दूसरे ग्रन्थ मे केवल २३४३ पद्य हैं। दोनो का वध बहुत ही ललित एवं मनोहर है। दोनो ग्रथो के आदवासो के अन्त मे निम्न गद्यांश लिखा हुआ मिलता है, "इदु (यह) परमजिनसमयकुमुदनीशरच्चन्द्रबालचन्द्रमुनीन्द्र-चरणनखकिरणचन्द्रिकाचकोर भारतीकर्णपूर श्रीमदभिनव-पपविरचितमप्प ।

मल्लिनाथपुराण की कथा छोटी है। केवल रसपुष्टि एव अनुषांगिक वर्णनो के कारण ग्रन्थ का प्रमाण बढ गया है। यद्यपि इसमे कल्पनास्वातन्त्र्य के लिए पर्याप्त गुञ्जाइश थी। मल्लिनाथ की अपेक्षा पपरामायण बडी है। इसमे पात्रो का चरित्रचित्रण बहुत ही सुन्दर ढग से हुआ है। ग्रथ मे लौकिक अनुभव का पुट भी यथेष्ट रूप मे मिलता है। नागचन्द्र ने मल्लिनाथपुराण के एक-दो ही नहीं, बल्कि अनेको महत्त्वपूर्ण सुन्दर पद्यों को पपरामायण मे ले लिया है। कवि आगम, अध्यात्म, अर्थशास्त्र, साहित्य आदि सभी विषयो मे निष्णात थे। इसके गुरु मुनि बालचन्द्र भी सकलगुणसम्पन्न उच्चकोटि के विद्वानो मे से थे। इसलिए शिष्य नागचन्द्र का तदनुरूप होना सर्वथा स्वाभाविक है। शातरस कवि को अधिक प्रिय था। इसीलिए इसकी दोनो कृतियाँ शांतरसप्रधान हैं। इसमे नि श्रेयस पदप्राप्ति की लालसा के साथ-साथ गुरु का प्रभाव भी मुख्य हेतु हो सकता है। अपने श्रद्धेय गुरु पर नागचन्द्र की असीम भक्ति थी। इसमें सदेह नही है कि कवि के तन, मन और धन ये तीनो ही जिनेन्द्रदेव की सेवा के लिए ही अर्पित थे। इसीलिए जिनार्चना और जिनगुणवर्णन के साथ-साथ इसने विजयपुर मे मल्लिनाथ-जिनालय का निर्माण कराकर अपने वैभव को सफल बनाया था। परमजिनभक्त, आचार्यपादपद्मोपजीवी नागचन्द्र अपने काव्य एव सदाचरण के लिए अमर रहेगे।

बेन्द्रे जी का अनुमान है कि महाकवि होने के पूर्व नागचन्द्र को शिलालेखों के कवि का सौभाग्य भी प्राप्त था क्योकि विजयपुर के शिलालेख मे ही नही अपितु श्रवणबेळगोळ के कई शिलालेखो मे इनके बहुत से पद्य विद्यमान हैं। इसमे किंचित भी सदेह नही है कि जैन कवियो ने ही मुख्यत शातरस को अपनाया है। काव्याध्ययन का उद्देश्य रागद्वेषो का प्रचोदन नही है, प्रत्युत अनत सुख की आधारभूत दर्शन विशुद्धि की प्राप्ति है। एक धर्मनिष्ठ व्यक्ति कवियो से चक्रवर्ती के असीम वैभव या देवेन्द्र के स्वर्गीय सुख के वर्णन नही सुनना चाहता है, क्योकि ये सब नश्वर हैं। वह चाहता है अक्षय सुख को पाने का सुगम एव निष्कटक उपाय बतलाने वाले महापुरुषों की सफल जीवनी जो

उसके हृदय को सकप एव द्रवीभूत करके उसी के चरणो मे तल्लीन कर सके। प्रतिभापुञ्ज महाकवि नागचन्द्र मे यह गुण मौजूद था।

वर्णनीय चरित्र एक ही जन्म का हो या अनेक जन्मो का, यदि कवि उसमे एक क्रम निर्धारित करने मे समर्थ होता है तो उसकी प्रतिभा प्रशस्त है। इसमे सदेह नही है कि नागचन्द्र ने मल्लिनाथ के उभय जन्मो के पावन चरित्र को बडी ही बुद्धिमत्ता से एक महाजन्म के पूर्वापर के रूप मे चित्रित किया है। इसमे उत्तर जन्म सम्बधी मधुर फलो के मुख्य वीज पूर्व जन्म के चरित्र मे स्पष्ट झलकते हैं। कथावस्तु मे अपूर्वता लाने मे कवि समर्थ हुआ है। इसमे सन्देह नहीं है कि कवि का रचना-कौशल सर्वथा प्रशसनीय है। नागचन्द्र ने अपने मल्लिनाथपुराण मे महाकवि पप के द्वारा प्रतिपादित (१) भुवन (२) देश (३) पुर (४) राजवृत्त (५) अर्हद्विभव (६) चतुर्गति (७) तपोमार्ग और (८) फल इन आठ कथानको को ही सहर्ष अपनाया है।

श्री वेन्द्रे के अनुसार, मल्लिनाथपुराण के २०३१ गद्य-पद्यो मे से लगभग २३५० गद्य-पद्य देश, पुर राजवृत्त आदि मे वर्णन के लिए ही रचे गये हैं। जनसाधारण की जीवनशैली को कवि ने विस्तारपूर्वक बहुत ही चित्ताकर्षक ढग से प्रस्तुत किया है। इसमे मानवसुख की चरम स्थिति के साथ ही साथ जैनेन्द्र पद की सर्वोत्कृष्टता का भी वर्णन है। नागचन्द्र अर्थान्तर न्यास का अधिक प्रेमी था, फलस्वरूप मल्लिनाथपुराण मे इसकी वहुलता है।

पपरामायण एक सरस महाकाव्य है। इसका आदर्श ईसा की सातवी शताब्दी में आचार्य रविषेण द्वारा सस्कृत मे रचित पद्मपुराण है। सस्कृत पद्मपुराण का आदर्श ई० सन् प्रथम शताब्दी मे विमलसूरि द्वारा रचित प्राकृत 'पउमचरियम्' है। जैन परम्परागत रामचरित्र ही इस पप-रामायण का प्रतिपाद्य विषय है। इसमे नायक रामचन्द्र के चरित्र के अगस्वरूप वासुदेव लक्ष्मण और प्रतिवासुदेव रावण का चरित्र, चक्रवर्ती, गणधर एव कुलकरो के चरित्र तथा चतुर्गति, लोकस्वरूप और कालस्वरूप आदि विषयो का भी विस्तार से वर्णन किया गया है (पपरामायण, आश्वास १, पद्य ४१)।

रामचन्द्र, लक्ष्मण, रावण, सीता, नारद, हनुमान, वालि तथा सुग्रीव पप-रामायण के प्रधान पात्र हैं। जीव का अतिम लक्ष्य मोक्ष की साधना तपस्या है। तपस्या मे प्रवृत्ति विरक्ति के द्वारा ही होती है। अत पाठको को इसमे इनकी

विरक्ति के अपूर्व दृश्य भी देखने को मिलेंगे। इसी प्रकार इसमे जन्मातर की कथाओ के दृश्य भी वर्णित हैं। वैभवशाली बडे-बडे राजा-महाराजा भी सामान्य मे सामान्य निमित्त पाकर किस प्रकार ससार मे विरक्त होकर आत्म हितार्थ कठिन मे कठिन तपस्या करने मे प्रवृत्त हो जाते हैं, ऐसी अद्भुत घटनाएँ भी पद्मरामायण मे प्रचुर परिमाण मे मिलती हैं।

यहाँ पर वाल्मीकीय रामायण एव पद्मरामायण मे पाये जानेवाले कुछ प्रमुख भेदो का भी उल्लेख कर देना आवश्यक है। पद्मरामायण मे राम की माता अपराजिता और शत्रुघ्न की माता सुप्रभा बताई गई हैं। सुमित्रा के लक्ष्मण एकमात्र पुत्र थे। जैनपुराण के अनुसार राम विष्णु का अवतार नही है, अपितु बलदेव हैं और लक्ष्मण शेष के अवतार नही हैं, अपितु वासुदेव हैं। इसी प्रकार रावण प्रतिवासुदेव है। राम धर्मनायक, लक्ष्मण वीरनायक और रावण प्रति वासुदेव है। रावण का वध राम नही अपितु लक्ष्मण करते हैं। सीता भूमिजा नही, बल्कि जनक की पुत्री हैं। सीता को प्रभामडल नामक भाई भी था। इसमे विश्वामित्र, परशुराम और मन्थरा की चर्चा ही नही है। सुग्रीव, बालि आदि बन्दर नही अपितु वानरवशीय विद्याधर थे। इनके ध्वजो पर कपि का चिह्न होता था। रावण से इनका सम्बन्ध भी था। वरुण के युद्ध मे हनुमान ने रावण की सहायता की थी। यहाँ पर राम के द्वारा बालि के वध का उल्लेख ही नही है। इसी प्रकार पद्म-रामायण मे सेतुबध का उल्लेख नही है। कपिध्वज विद्याधरी आकाशगामिनी विद्या के बल से समुद्र पार करते हैं। पद्मरामायण के अनुसार राक्षस और वानर दोनो ही विद्याधरवश के थे। हनुमान रावण की बहन के जामतृ थे। रावण के दुराचार से रुष्ट होकर ही हनुमान और विभीषण राम के साथ आकर मिल गये। रावण राक्षस नही था, किन्तु राक्षसवश का था। उसके दश मस्तक भी नही थे। शबूक शूद्र न होकर, रावण की बहन चन्द्रनखा का लडका था। 'सूर्यहास' खड्ग के लिए तपस्या करते हुए उसे लक्ष्मण ने भ्रान्तिवश मारा था जो रावण द्वारा सीतापहरण का एकमात्र कारण बन गया। राम का वर्ण गौर और लक्ष्मण का श्याम था और लक्ष्मण ने ही रावण को मारा था, राम ने नही। राम उसी भव मे मोक्ष गये हैं।[1]

---

[1] विशेष के लिए 'जैन सन्देश' शोधांक १२ मे प्रकाशित 'जैन रामायण के विविध रूप' शीर्षक मेरा लेख देखें।

पपरामायण मे सीता द्वारा अग्निप्रवेश की घटना राम-रावण युद्ध के बाद तथा अयोध्या जाने के पूर्व घटित नही होती है प्रत्युत लव-कुश के जन्म के बाद घटित होती है। वस्तुत अग्निप्रवेश के बाद विरक्त हो, वह जिन-दीक्षा ही ले लेती है। विरक्ति का कारण एकमात्र उस पर लगाया गया मिथ्या लाछन ही था। लक्ष्मण का अद्भुत भ्रातृप्रेम, सीता का असीम पति प्रेम, वैभवशाली सुन्दर और शूरवीर होने पर भी परदाराभिकाक्षी रावण का सीता द्वारा तिरस्कार, अहिंसादि व्रतो का मार्मिक वर्णन, बन्दर, हाथी आदि पशुओ का धर्म पर अचल प्रेम, मुनि-आर्यिका आदि त्यागी तपस्वियो के आदर्श चरित्रो का सजीव वर्णन आदि प्रसग सामान्य जनता पर भी अपना गहरा प्रभाव डालते हैं।

पपरामायण मे विज्ञ पाठक रावण को मानवोचित दया, क्षमा, सौजन्य, गाम्भीर्य एव औदार्य आदि महान् गुणो से युक्त पायेंगे। जैन रामायण मे ही नही, अपितु वाल्मीकिरामायण मे भी कई स्थानो पर रावण को 'महात्मा' शब्द से सम्बोधित किया गया है (सुन्दरकाण्ड, सर्ग ५,१०,११) इतना ही नही, वाल्मीकि रामायण से यह भी सिद्ध होता है कि रावण की राजधानी मे घर-घर मे वेदपाठी विद्वान् थे और प्रत्येक घर मे हवनकुड था। धर्मात्मा रावण के महलो मे कभी कोई भी अशुभ कार्य नही किया जाता था, अपितु वेद-प्रतिपादित शुभ कर्म ही किये जाते थे (सुन्दरकाण्ड, सर्ग ६ तथा १८)।[1]

पपरामायण के निम्नलिखित प्रकरणो का वर्णन विशेष उल्लेखनीय है— (१) स्वयम्बर के उपरान्त सीता को देखने के कुतूहल से नारद मुनि रूप मे आकाश मार्ग से मिथिला आते हैं और अवसर पाकर अन्त.पुर में प्रवेश कर जाते हैं। छद्मवेशी नारद को सीता अचानक देख लेती है और उनके विचित्र रूप से भयभीत हो, वह जोर से चिल्ला उठती है। इस दयनीय आवाज को सुनकर अन्त.पुर की रक्षिकाएँ दौड आती हैं। तब तक नारद अपने अनुचित व्यवहार के लिए स्वय लज्जित होकर, वहाँ से वापिस चल पडते हैं। यह वर्णन स्वाभाविक सुन्दर एव बहुत ही हृदयग्राही है। इसका अनुभव एक भुक्तभोगी ही कर सकता है। इस वर्णन मे सत्य, सौन्दर्य एव चातुर्य आदि सभी अन्तर्हित हैं (पंपरामायण, आश्वास ४, पद्य ८०-८८)।

---

१. "जैन सिद्धान्तभास्कर", भाग ६, किरण १ मे प्रकाशित 'जैन रामायण का रावण' शीर्षक मेरा लेख देखें।

(२) मालूम होता है कि नागचन्द्र उद्दण्ड घोडो की चाल से अच्छी तरह परिचित थे। साथ-ही साथ ऐसे घोडो पर चढ़ना वह अधिक पसन्द करते थे। इसीलिए एतज्जन्य कवि का अनुभव सर्वथा श्लाघनीय है (पपरामायण, आश्वास ४, पद्य १०५, २०६, २०८, १११, ११२, ११४, ११८ और १२०)

(३) सीता का पतिवियोगजन्य तथा राम का पत्नीवियोगजन्य असीम दुःख पपरामायण में बहुत ही हृदयविदारक ढग से वर्णित है। इस वर्णन को पढ़ने से वस्तुत पाठको की आँखें भर आती हैं और मर्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्र एव पतिव्रताशिरोमणि सीता के प्रति सहानुभूति पैदा होती है (पपरामायण, आश्वास ७, पद्य १०७, १११, ११३, ११६, ११७ और ११८)।

(४) इसी प्रकार 'मल्लिनाथपुराण' मे वसन्तोत्सव का वर्णन भी सर्वथा पठनीय है। इस वर्णन मे खासकर भ्रमर—मल्लिकालताओ का विवाहवर्णन एक कुतूहलोत्पादक वस्तु है (मल्लिनाथपुराण, आश्वास ६, पद्य ४०, ४३, ४४, ४५ और ४६)।

नागचन्द्र एक रसिक कवि था। साथ ही-साथ उसमे अगाध पाडित्य भी मौजूद था। इन कृतियो मे सर्वत्र कवि की अनुप्रासप्रियता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। यमक के प्रयोग से इनका काव्यसौन्दर्य बढ गया है। साराशत नागचन्द्र के ग्रन्थो मे अनुनासिक, दत्य और अनुस्वार के आधिक्य से प्राप्त सौन्दर्य वस्तुत दर्शनीय है। बारहवी शताब्दी मे कन्नड की भेरी को बजाने वाले प्रथम कवि अभिनवपप के नाम से विख्यात नागचन्द्र ही हैं। महाकवि नागचन्द्र एक उद्दाम कवि हैं। उनके ग्रन्थो मे क्षात्रधर्म की अपेक्षा भक्ति एव वैराग्य का प्रवाह ही विशेष रूप से दृष्टिगोचर होता है। कवि की कृतियाँ सर्वत्र शान्तरस से ओतप्रोत हैं। इसी रस के अनुरूप कवि की काव्यशैली भी है। महाकवि पप और रन्न की अपेक्षा नागचन्द्र की शैली ललित और सरल है।

कन्ति

अभी तक इस कवयित्री का कोई स्वतन्त्र ग्रथ नही मिला है। केवल 'कन्ति हपन समस्येगळु' नाम से इसके कुछ फुटकर पद्य अवश्य मिले हैं। द्वारसमुद्र के बल्लालराय की सभा मे महाकवि अभिनवपप द्वारा जो समस्याएँ रखी गई थी, उन्ही समस्याओ की पूर्ति इसने की थी। उपर्युक्त संग्रह मे पूर्वोक्त सम-

स्याएँ तथा उनकी पूर्तियाँ सगृहीत हैं। कवि बाहुबलि (लगभग १५६० ई०) ने अपने 'नागकुमारचरित' मे दोर(बल्लाल)-सभा की मगललक्ष्मी, शुभ-गुणचरिता, अभिनववाग्देवी आदि सुन्दर विशेषणो द्वारा स्तुति की है। इससे ज्ञात होता है कि कति द्वारसमुद्र के बल्लालराय की सभा मे पण्डिता रही होगी। अभिनववाग्देवी इसकी उपाधि थी। इस कवयित्री के बारे में देवचन्द्र ने अपनी 'राजावली-कथे' मे इस प्रकार लिखा है—

'दोरराय द्वारसमुद्र नामक एक विशाल जलाशय का निर्माण कराकर तथा धर्मचन्द्र नामक एक ब्राह्मण को अपना मन्त्री नियुक्तकर सुचारुरूप से वहाँ का राज्य कार्य करता था। मन्त्रिपुत्र स्वय अध्यापन-कार्य सम्हालता हुआ बालको को छन्द, अलकार, व्याकरण और काव्य आदि सभी विषयो को पढाया करता था। अध्यापक मन्दबुद्धिवाले बालको के मति-प्रकाशनार्थ 'ज्योतिष्मती' नामक बुद्धिवर्धक एक विशिष्ट तैल तैयार करके उसमे से मन्द-बुद्धिवाले बालको को अर्ध बिन्दु के परिमाण से दिया करता था। तैलसेवन-विधि से अनभिज्ञ कति ने प्राय अधिक लाभ के लोभ से गुरुजी की अनुप-स्थिति मे पात्रस्थ पूरे तैल को एक ही बार मे पी डाला।

फलत· औषधजन्य असह्य गर्मी को न सहन कर तुरन्त वह दौडकर कुएँ मे गिर गई। वहाँ पर कठप्रमाण पानी मे अधिक समय तक रहने से जब तैल की गर्मी कम हुई और वह कुएँ मे खडी होकर सुन्दर कविताएँ बनाने लगी तब उस अपूर्व घटना को देखकर सभी आश्चर्य में पड गए। वह विचित्र समाचार तुरन्त दोरराय के आस्थान (सभा मण्डप) मे भी पहुच गया। इस बात की वास्तविकता का पता लगाने के लिए राजा दोर ने अपने आस्थान के ख्यातिप्राप्त महाकवि अभिनवपम्प को भेजा। उभय भाषा कवि पम्प ने घटनास्थल पर पहुचकर कति से एक दो नही, सैकडो प्रश्न किये। कवयित्री कति ने भी सभी प्रश्नो को समुचित उत्तर देकर सुयोग्य परीक्षक महाकवि को चकित कर दिया। बाद मे महाकवि पम्प ने कति को राजदरबार मे पहुचाया। दरबार मे दोर ने इसकी कविता से प्रसन्न होकर कति को अपने आस्थान की कवीश्वरी घोषित किया और कवयित्री को अपने आस्थान मे ही रखा।

सम्भवत कति को 'अभिनव वाग्देवी' की उपाधि बल्लालराय दोर के द्वारा ही प्रदान की गई थी। यदि अभिनवपम्प द्वारा कति को समस्याए देने

की बात यथार्थ है तो कति, पम्प की समसामयिक सिद्ध होती है। अभिनव-पम्प का समय लगभग ११०० ई० है। उपर्युक्त दोर भी द्वारसमुद्र का तत्कालीन शासक बल्लाल (ई० सन् ११००-११०६) ही होना चाहिए। मालूम होता है कि इसकी सभा में पप, कति आदि सुयोग्य कवि अवश्य मौजूद थे।

आज तक के अन्वेषण से कन्नड कवयित्रियो मे कति ही प्रथम कवयित्री है। कुछ फुटकर उल्लेखो से ज्ञात होता है कि महाकवि पप और कति मे बराबर सवाद चलता रहा। साथ-ही-साथ यह भी कहा जाता है कि किसी प्रकरण मे एक रोज पप ने कति के समक्ष यह प्रण कर लिया कि जो भी हो किसी दिन मैं तुम से अवश्य अपनी स्तुति करा लूँगा। इस जटिल समस्या को हल करने के लिए अभिनवपप ने एक रोज कति के पास अपनी मृत्यु की दुःखद खबर भेजी। इस खबर से कवयित्री कति बहुत दु खी हुई और दौडती हुई पप के घर पहुँचकर 'कविराय, कविपितामह, कविकठाभरण, कविशिखा पम्प' आदि पद्यो द्वारा कति ने महाकवि पम्प की मुक्तकठ से प्रशसा की तब पम्प उठकर बाहर आया और प्रसन्न होकर कति से कहा कि 'आज मेरा पूर्व प्रण पूरा हो गया।' कति भी महाकवि को सामने पाकर बडी प्रसन्न हुई। 'कतिहपनसमरयेगळु' नाम के जो पद्य इस समय उपलब्ध होते हैं, वे साहित्य की दृष्टि से भी सुन्दर हैं। कवयित्री कति के सम्बन्ध मे इसमे अन्य कोई जानकारी उपलब्ध नही है।

नयसेन

इन्होने 'धर्मामृत' की रचना की है। नागवर्म (लगभग ११४५ ई०) ने अपने 'भाषाभूषण' के 'दीर्घोक्तिर्नयसेनस्य' नामक सूत्र (७२) मे उपर्युक्त नयसेन के मतानुसार सम्बोधन मे दीर्घ को स्वीकार किया है। इससे सिद्ध होता है कि नयसेन ने एक कन्नड व्याकरण भी रचा था। पर अभीतक उसका पता नहीं चला है। कवि की कृतियो मे एकमात्र धर्मामृत ही उपलब्ध है। श्री नरसिंहाचार्य के अनुसार नयसेन ने इस धर्मामृत को वर्तमान धारवार जिलान्तर्गत मुळगुन्द मे रचा था।

श्री आर० नरसिंहाचार्य ने अपने 'कविचरिते' मे 'गिरिशिखिवायुमार्ग-शशिसख्ये' नामक धर्मामृत के इस असमग्र पद्य के आधार पर इस ग्रंथ का रचनाकाल शा० श० १०३७ बतलाया है। परन्तु उन्होने शका प्रकट की है

कि उक्त पद्य के उत्तरार्द्ध मे प्रयुक्त नन्दन सवत्सर १०३७ मे न आकर १०३४ मे आता है। इससे वह अनुमान करते हैं कि 'प्राय: जैनमतावलबी गिरि शब्द से ४ का अक लेते हैं और यदि मेरा यह अनुमान ठीक है तो धर्मामृत ई० सन् १०११ मे रचा गया था।' परन्तु मेरी जानकारी मे गिरि शब्द से ४ का अर्थ लेना जैनधर्म को भी मान्य नही है। इसलिए उपर्युक्त अतर का कारण और भी कुछ होना चाहिए। इस कारण को ढूँढना परमावश्यक है।

आश्वास के आद्यन्त के पद्यो से मालूम होता है कि नयसेन को 'सुकवि-निकरपिकमाकन्द' और 'सुकविजनमन पद्मिनीराजहस' की उपाधियाँ प्राप्त थी। इसके अतिरिक्त आश्वासो के अत के गद्यो मे इन्होने अपने को दिगम्बर-दास नूत्नकविताविलास भी बतलाया है (कर्णाटक कविचरिते, प्रथम भाग, पृष्ठ २२८)। स्व० डा० शामशास्त्री और जी० वेंकटसुब्बय्य की राय से 'वात्सल्य रत्नाकर' और नूत्नकविताविलास भी कवि की उपाधियाँ थीं (नयसेन, पृष्ठ ६ और धर्मामृत का उत्तरार्द्ध)। वेंकटसुब्बय्य का यह भी कहना है कि 'नयसेन ने अपने वश, माता-पिता, आश्रयदाता आदि के सम्बन्ध मे कुछ भी नही लिखा है। इसी प्रकार इन्होने अपने गुरु का स्मरण तो अवश्य किया है, परन्तु स्पष्ट नाम लेकर नहीं, अपितु त्रैविद्य चूडामणि, त्रैविद्यचक्रेश्वर, त्रैविद्यलक्ष्मीपति और त्रैविद्यचक्राधिप आदि उपाधिसूचक शब्दो के द्वारा ही किया' है (कविचरिते, प्रथम भाग, पृष्ठ २२८)।

कवि ने धर्मामृत मे अपने वश, माता-पिता, आश्रयदाता आदि का नाम इसलिए नही लिखा होगा कि धर्मामृत के रचनाकाल के समय वह मुनि हो गया था। क्योकि इन्होने अपनी कृति मे नयसेनदेव और नयसेनमुनीन्द्र आदि शब्दो के द्वारा ही अपने को स्पष्ट मुनि सूचित किया है। वस्तुत नयसेन मुनियो का नाम है, न कि गृहस्थो का। मुनि अवस्था मे कवि अपने पूर्ववश माता-पिता, आश्रयदाता आदि के बारे मे कुछ भी नही लिख सकता था। यद्यपि अपनी गुरुपरम्परा के विषय मे वह बहुत कुछ लिख सकता था। इनके इस तरह मौन रहने का कारण अज्ञात है। फिर भी धर्मामृत के 'गुरु विद्याब्धिनरेन्द्रसेनगुरुप" नामक पद्य के द्वारा 'त्रैविद्यचक्रेश्वर' मुनि नरेन्द्रसेन को कवि ने अपना गुरु स्पष्ट सूचित किया है।

नाम के आधार पर नरेन्द्रसेन तथा नयसेन ये दोनो ही गुरु-शिष्य दिगम्ब-राम्नाय के उसी सुप्रसिद्ध सेनगण के मुनि सिद्ध होते हैं, जिसमें प्रात. स्मरणीय आचार्य वीरसेन, जिनसेन और गुणभद्रादि महान् आचार्य हो चुके हैं। इस

सिलसिले मे एक बात और रह जाती है, वह यह है कि यदि नयसेन ने 'धर्मामृत' को अपनी मुनि अवस्था मे मुळगुन्द मे रचा है, तो फिर मुळगुन्द को कवि का जन्मस्थल मानना ठीक नही होगा, क्योकि दिगम्बर मुनि किसी भी स्थान पर दीर्घकाल तक नही ठहर सकते हैं। वे सदैव विहार करते रहते है। केवल चातुर्मास मे शास्त्रोक्तरीत्या चातुर्मास की समाप्ति तक एक स्थान पर ठहरते है। ऐसी अवस्था मे मुनि नयसेन मुळगुन्द के निवासी नही, प्रवासी ही रहे होगे।

धर्मामृत की रचना इन्होने मुळगुन्द मे ही की थी अर्थात् उपर्युक्त ग्रथ के समाप्ति काल मे नयसेन मुळगुन्द मे अवश्य रहे। नयसेन के पूर्व ही कन्नड साहित्य मे कथा-साहित्य का जन्म हो चुका था, वड्डाराधना इसका प्रबल प्रमाण है। वड्डाराधना के बाद नयसेन के कालतक का दूसरा कोई इस प्रकार का कथाग्रथ कन्नड साहित्य मे अभी तक उपलब्ध नही हुआ है। इसी दृष्टि से जी० वेंकटसुब्बय्य का यह कथन ठीक है कि जनसामान्य की साहित्यरचना मे नयसेन ही पथप्रदर्शक रहा। इसमे सन्देह नही है कि नयसेन इस बात को अच्छी तरह जानता था कि धर्म के प्रसार-प्रचार मे ऐसी कथाएँ अत्यधिक उपयोगी होती हैं, क्योकि प्रत्येक मानव जन्म से ही कथा सुनने का आदी होता है। बूढी नानी की विचित्र कथाओ से ही बच्चो का विद्याभ्यास आरंभ होता है। बच्चो को कथा सुनाने मे नानी को भी कम दिलचस्पी नही होती। इस प्रकार जैसे-जैसे कथा सुनने और सुनाने की अभिरुचि बढती जाती है वैसे वैसे ही कथा साहित्य का भण्डार भरता जाता है।

कन्नड मे कथा साहित्य का जन्म कब हुआ यह कहना कठिन है। हाँ, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि कन्नड के अन्यान्य अगो की तरह कथा साहित्य के जन्मदाता भी जैन कवि ही हैं। कन्नड कथा साहित्य के आज तक के उपलब्ध ग्रथो मे जैन ग्रंथ वड्डाराधना ही सबसे प्राचीन है।

जी० वेंकटसुब्बय्य के इस अभिप्राय को मैं भी स्वीकार करता हूँ कि प्रारभ मे कन्नड कवियो ने पुराणो मे सस्कृत महाकाव्यो की ही शैली को अपनाकर अपने ग्रथो को जनसाधारण की अपेक्षा विद्वद्भोग्य ही अधिक बनाया है। दीर्घ समास, श्लेष आदि क्लिष्ट अलकार, अष्टादश वर्णन, कठिन भाषा और धर्म को प्रतिपादित करनेवाली प्रौढ शैली आदि के कारण ये पुराण सामान्य जनता की जिज्ञासा को तृप्त नही कर सके। इस विचार को स्वीकार करने मे कवियो को पर्याप्त समय लग गया। प्राय कवियो ने १२वीं

शताब्दी के पूर्वार्ध मे इस ओर लक्ष्य किया। यही कारण है कि इसका सारा श्रेय नयसेन को दिया जाता है।

यद्यपि जी० वेंकटसुब्बय्य की इस बात से मैं सहमत नही हूँ कि जैनो का सारा कथा साहित्य वैदिक और बौद्ध कथा साहित्य का रूपान्तर है। इस सम्बन्ध मे उनसे इतना ही निवेदन करना चाहता हूँ कि निष्पक्ष दृष्टि से सारे जैन कथा साहित्य का एक बार बारीकी से अध्ययन कर डालें।[1] किसी भी विषय के केवल सतही अध्ययन के आधार पर अपना मत दे देना ठीक नही है।

नयसेन को कन्नड मे सस्कृत के दीर्घ समासो वाली पुरानी प्रौढ शैली का अनुकरण पसन्द नही था। इसीलिए इन्होंने अपने एक पद्य मे ऐसे पुराने कवियो का खुले शब्दो मे मजाक भी किया है। कथन है कि 'सस्कृत में लिखो या शुद्ध कन्नड मे, परन्तु कन्नड मे सस्कृत के दीर्घ समासो को देकर, शैली को गहन मत बनाओ। इससे तैल और घी के मिलावट की तरह दोनो मे कोई भी भोगयोग्य नही होगा।' यद्यपि इसका अभिप्राय यह नही है कि नयसेन कन्नड मे सस्कृत शब्दो को अपनाने का ही निषेध करते थे, उपर्युक्त पद्य मे ही तैल और घृत इन सस्कृत शब्दो का प्रयोग भी किया है। कहने का अभिप्राय इतना ही है कि सस्कृत के सुलभ शब्दो को कन्नड मे लेने से कोई हानि नहीं है। हाँ, कठिन शब्दो के प्रयोग से कवि के आशय को जानने मे जन-साधारण को बडी दिक्कत होती है। इसमें सन्देह नही है कि कोई भी ग्रथ सुलभ शैली मे लिखे जाने पर ही लोकमान्य हो सकता है।

नयसेन कृत धर्मामृत मे कुल १४ आश्वास हैं। इन आश्वासो मे क्रमश सम्यग्दर्शन, उसके आठ अग तथा अहिंसा आदि पांच अणुव्रतो का निरतिचार अनुष्ठान करके सद्गति को प्राप्त करनेवाले महात्माओ की पवित्र कथाएँ सुन्दर ढंग से निरूपित हैं। ग्रथ की शैली सरल स्वाभाविक है। कवि सरल शैली का ही पक्षपाती है। इसमे प्रसिद्ध वृत्त ही अधिक हैं, अप्रसिद्ध वृत्त बहुत कम हैं। इसी प्रकार इसमे कन्दो (छन्द विशेष) की भी अधिकता है। विलक्षणता इनके गद्य मे ही दृष्टिगोचर होती है। कन्नड चम्पू ग्रथो मे आनेवाले गद्य अधिक मात्रा मे कादम्बरी, हर्षचरित आदि की शैली के हैं। परन्तु इस शैली मे और नयसेन की शैली मे बहुत अन्तर है। नयसेन की शैली मे खोजने पर भी प्राचीन

---

१. इस सम्बन्ध मे 'उपायन' आदि अभिनन्दन ग्रथों मे प्रकाशित 'जैन कथा साहित्य' शीर्षक मेरा लेख देखें।

कवियो के प्रिय परिसंख्या, विरोधाभास, श्लेष, अत्युक्ति आदि अलंकार नहीं मिलते हैं। कही भी देखें, सर्वत्र उपमा, मालोपमा, दैनदिन अनुभव के प्रासगिक दृश्यो का सादृश्य और लोकोक्तियाँ आदि ही उपलब्ध होती है। इसलिए पण्डितो को यह ग्रथ चमत्काररहित और नीरस प्रतीत हो सकता है, परन्तु सामान्य जनता इसी तरह के ग्रथो को अधिक पसन्द करती है। उसे चमत्कारिता और अलकारवैचित्र्य आदि पसद नही होते हैं। कन्नड शब्दो के प्रयोग मे भी नयसेन ने व्याकरणसम्मत एवं पूर्वकवियो के द्वारा प्रयुक्त शुद्ध प्राचीन कन्नड को न अपनाकर अपने काल की नवीन कन्नड मे ही ग्रथ रचने की प्रतिज्ञा की है। हर्ष की बात है कि कवि ने अपनी इस प्रतिज्ञा को अत तक निभाया है। हाँ, प्रतिज्ञानुसार धर्मामृत मे तत्कालीन कन्नड के साथ ही साथ गद्यकालीन कन्नड भी उपलब्ध है।

जैनो के अनुयोग-चतुष्टय के अन्तर्गत प्रथमानुयोग सम्बन्धी पुराण, काव्य तथा चरित्र आदि ग्रथो का एकमात्र आशय मानव को दुराचार से हटाकर सदाचार मे लगाना है। इसलिए इस अनुयोग से सम्बन्ध रखनेवाले प्रत्येक ग्रथ मे पाठको को हिंसा आदि दुराचार से होनेवाली हानि तथा अहिंसा आदि सदाचार से होनेवाली उपलब्धियो को सुन्दर ढग से दर्शाया गया है। जिस प्रकरण मे जिसकी प्रधानता है, उसमे उसी की प्रशसा की गयी है। 'जिसकी शादी है उसका गीत' की लोकोक्ति यहाँ चरितार्थ हुई है।

इसमे सन्देह नहीं है कि महापुरुषो के चरित्रश्रवण से थोडे समय के लिए ही सही, मन मे पापभीति एव ससार से विरक्ति अवश्य होती है। वस्तुतः मन की पवित्रता ही आत्मकल्याण की जड है। इसीलिए कहा गया है कि 'मन एव मनुष्याणा कारण बधमोक्षयो'। सपूर्ण रामायण की कथा को सुनने के बाद एक सामान्य व्यक्ति भी इतना अवश्य जान जाता है कि रावण की तरह न चलकर राम की तरह चलना चाहिए। रामायण सुनने का यही फल है।

अस्तु, नयसेन का धर्मामृत भी प्रथमानुयोग सबधी ग्रथ है। इसका भी उद्देश्य वही है जो प्रथमानुयोगसबधी और ग्रथो का होता है। श्री आर० नरसिंहाचार्य के शब्दो में नयसेन का यह ग्रथ मृदुमधुरपदगुम्फित, नीतिश्लोकपुजरजित ललित कृति है। इसमे सन्देह नही है कि धर्मामृत के रचयिता नयसेन एक प्रौढ कवि हैं।

राजादित्य

इन्होने व्यवहारगणित, क्षेत्रगणित, व्यवहाररत्न, लीलावति, चित्रहसुगे, जैनगणितसूत्रटीकोदाहरण आदि गणित ग्रथो की रचना की है। इनके ग्रथो से विदित होता है कि इनके भास्कर, वाचवाचय्य, वाचिराज आदि अनेक नाम थे। साथ ही-साथ इन्हे गणितविलास, ओजेवेडग, पद्यविद्याधर आदि उपाधियाँ प्राप्त थी। कूडिमडलान्तर्गत पूविनबागे इनकी जन्मभूमि थी। राजादित्य की पत्नी का नाम कनकमाला था। कवि ने अपने को 'कवीश्वरनिकरसभायोग्य' कहा है। इससे मालूम होता है कि यह दरबारी पण्डित रहा होगा। कवि ने शुभचन्द्र को अपना गुरु बतलाया है। राजादित्य ने अपनी रचना मे विष्णुनृपाल का नामोल्लेख किया है। अन्यान्य आधारो से यह सिद्ध होता है कि होयसल राजा विष्णुवर्धन ने लगभग ई० सन् ११११ से ११४२ तक राज्य किया था। सम्भवत कविराजादित्य इसी विष्णुवर्धन का समकालीन था।

श्रवणवेळगोळ के ११८वें अभिलेख से ज्ञात होता है कि एक शुभचन्द्र ११२३ मे स्वर्गवासी हुए थे। यही कवि के गुरु मालूम होते हैं। यदि यह बात ठीक है तो राजादित्य विष्णुवर्धन का आस्थानपण्डित होकर लगभग ११२० मे जीवित रहे होगे। राजादित्य ने अपने पाण्डित्य एव गुणो को समस्तविद्या-चतुरानन, विबुधाश्रितकल्पमहीरुह, आश्रितकल्पमहीज, विश्रुतभुवनकीर्ति, शिष्टेष्ट-जनैकाश्रय, अमलचरित्र, अनुरूप, सत्यवाक्य, परहितचरित, सुस्थिर, भोगी, गभीर, उदार, सच्चरित्र, अखिलविद्याविद्, जनतासस्तुत्य, सर्वीश्वर निकरसभासेव्य आदि शब्दो द्वारा व्यक्त किया है। इनकी रचनाओ मे व्यवहार-गणित एक गद्यपद्यात्मक कृति है। इसमें सूत्रो को पद्यरूप मे लिखकर टीका तथा उदाहरण दिये गये हैं। ग्रथ आठ अधिकारो मे विभक्त है। प्रत्येक अधि-कार को हार सज्ञा दी गयी है। इसमे कवि ने स्वय कहा है कि 'इस ग्रथ को मैंने सिर्फ पाँच दिनो मे लिखा है।' साथ ही साथ इन्होने अपने ग्रथ की पर्याप्त प्रशंसा भी की है।

राजादित्य के व्यवहारगणित मे सहजत्रयराशि, व्यस्तत्रयराशि, सहजपच-राशि, व्यस्तपचराशि, सहजसप्तराशि, व्यस्तसप्तराशि, सहजनवराशि, व्यस्त-नवराशि आदि कई विषय हैं। श्री आर० नरसिंहाचार्य के मत से कन्नड मे गणितशास्त्र को लिखनेवाले कवियो मे राजादित्य ही प्रथम कवि हैं। इन्होने गणितशास्त्र से सम्बन्ध रखनेवाले प्राय सभी विषयों का अपने ग्रथो मे सग्रह किया है। जनता को सुलभता से समझाने के लिए गणितशास्त्र को पद्यरूप मे

लिखना बहुत कठिन है, फिर भी इन्होने सूत्रो एव उदाहरणो को बहुत ही ललित पद्यो मे अभिव्यक्त करने का सफल प्रयत्न किया है। इन पद्यो से यह बात स्पष्ट है कि ये केवल गणितशास्त्र के मर्मज्ञ ही नही थे, बल्कि एक प्रौढ कवि भी थे। यह ज्ञात नही है कि राजादित्य के इन ग्रथो का आदर्श कौन-सा ग्रथ था।

राजादित्य का दूसरा ग्रथ क्षेत्रगणित और तीसरा व्यवहाररत्न है। व्यवहाररत्न मे कुल पाँच अधिकार है। कवि का चौथा ग्रथ जैनगणितसूत्रोदाहरण है। इसमे प्रश्न देकर उत्तर पाने का विधान बतलाया है। राजादित्य का पाँचवा ग्रथ चित्रहसुगे है। यह सूत्रटीकारूप है। इनका छठवा ग्रथ लीलावति है, जो पद्यरूप है। इसमे गणितीय समस्याओ को उदाहरण सहित समझाया गया है। इसमे सदेह नही है कि राजादित्य एक अच्छे गणितज्ञ थे। सभव है कि विद्वानो की दृष्टि से ओझल इनका गणितशास्त्र सम्बन्धी अन्य भी कोई महत्त्वपूर्ण ग्रथ रहा हो।

कीर्तिवर्म

इन्होंने 'गोवैद्य' नामक ग्रन्थ लिखा है। इनके पिता त्रैलोक्यमल्लाधिप, अग्रज विक्रमाक नरेन्द्र और गुरु देवचन्द्र मुनि थे। इनके लगभग समकालीन कवि ब्रह्मशिव ने भी अपनी 'समयपरीक्षा' मे उपर्युक्त बातो का समर्थन किया है बल्कि ब्रह्मशिव के कथनानुसार कवि के पिता त्रैलोक्यमल्लाधिप चालुक्यवशी सिद्ध होते है। चालुक्य वश मे त्रैलोक्यमल्ल ने ई० सन् १०४२ से १०६८ तक तथा उनके पुत्र विक्रमादित्य ने ई० सन् १०७६ से ११२६ तक राज्य किया था। यही विक्रमादित्य कवि के बड़े भाई होगे। ऐसी अवस्था मे कीर्तिवर्म का समय ई० सन् ११२५ मानना अयुक्तिसगत नही है। यही मत श्री आर० नरसिंहाचार्य का भी है।

विक्रमादित्य के दो भाई थे। एक जयसिंह (तृतीय) और दूसरे विष्णुवर्धनविजयादित्य। यह ज्ञात नही है कि कीर्तिवर्म इन्ही दो मे से एक था या तीसरे। मालूम होता है कि त्रैलोक्यमल्ल की केतलदेवी नामक एक जैनधर्मानुयायिनी रानी भी थी और उसने अपनी ओर से कुछ जिनालय भी बनवाये थे।[1] सभव है कि कवि उसी का पुत्र हो। श्री आर० नरसिंहाचार्य का कहना है कि श्रवणबेळगोळस्थ ६४वें अभिलेख (११६८ ई०) मे प्रतिपादित गुरुपरम्परा

---

१ Antiquity, Vol XIX, P 268

में राघवपाण्डवीय के रचयिता श्रुतकीर्ति के समकालीन किसी देवचन्द्र की भी स्तुति की गई। यही देवचन्द्र कवि के गुरु रहे होंगे। कीर्तिवर्म ने अपने सम्बन्ध में कविकीर्तिचन्द्र, कन्दर्पमूर्ति, सम्यक्त्वरत्नाकर, बुधभव्यवान्धव, वैद्यरत्न, कविताब्धिचन्द्रम्, कीर्तिविलास आदि विशेषणो का उल्लेख किया है।

वस्तुत यह एक उल्लेखनीय बात है कि जैन कवियो ने प्रत्येक विषय पर अपनी कलम चलाई है। इन कवियो ने केवल मानव हित के लिए ही नही, पशु-पक्षियो के मगल के लिए भी बहुत कुछ किया है। वैसे अहिंसा-प्रधान जैनधर्म के अनुयायी के लिए यह कोई नई बात नही है। जैन तीर्थंकरो की समवसरणसभा मे भी किसी भेद-भाव के विना प्राणीमात्र को प्रवेश करने का एव उनके कल्याणकारी उपदेश को सुनने का पूर्ण अधिकार प्राप्त था। वस्तुत· जिस धर्म मे इस प्रकार की उदारता नही है, वह विश्वधर्म कहलाने का दावा नही कर सकता। इसलिए कीर्तिवर्म का यह प्रयास वास्तव मे स्तुत्य ही नही, अनुकरणीय भी है। सस्कृत में 'मृगपक्षिशास्त्र' नामक एक और जैनग्रथ है जो कि अपने विषय की एक अमूल्य कृति है। इस ग्रथ की प्रशसा केवल पौर्वात्य विद्वानो ने ही नही, पाश्चात्य विद्वानो ने भी मुक्तकठ से की है। इस समय यह ग्रथ अप्राप्य है।

कीर्तिवर्म के गोवैद्य मे गोव्याधियो की औषध, मत्र और यत्र आदि विस्तार से बतलाये गये हैं। यह ग्रथ प्रकाशनीय है। इसमे सन्देह नहीं है कि कीर्तिवर्म का प्रयास प्रशसनीय है।[1]

ब्रह्मशिव

इन्होने समय परीक्षा एव त्रैलोक्यचूडामणिस्तोत्र की रचना की है। इनका गोत्र वत्स, जन्मस्थल पोट्टणगेरे और पिता सिंगराज हैं। कवि ने अपने को अग्गल का मित्र बतलाया है। किंतु यह ज्ञात नही है कि यह अग्गल कौन से थे? कम से कम ये चन्द्रप्रभपुराण के रचयिता अग्गलदेव (११८९) तो नही ही हैं। ब्रह्मशिव के गुरु मुनि वीरनन्दि हैं। समयपरीक्षा के एक पद्य से कवि सौर, कौलोत्तर आदि सम्प्रदायो तथा वेद और स्मृति आदि धर्म ग्रन्थो का विशेषज्ञ मालूम होता है। इन्होंने उपर्युक्त धर्मग्रथो को सारहीन ठहराया है। इनके एक पद्य से यह भी ज्ञात होता है कि पहले यह शैव थे। उसे सारहीन अनुभव कर, बाद मे इन्होने जैनधर्म को स्वीकार किया था। इसकी पुष्टि कवि

---

१ विशेष जिज्ञासु 'लोकोपयोगी जैन कन्नड ग्रथ' शीर्षक मेरा लेख देखें।

के नाम से भी होती है। त्रैलोक्य चूडामणिस्तोत्र के अंतिम पद्य से सिद्ध होता है कि राजसम्मान के साथ-साथ इन्हे 'कविचक्रवर्ती' की उपाधि भी प्राप्त थी। ब्रह्मशिव ने अपनी समय परीक्षा का आरम्भ चालुक्य त्रैलोक्यमल्ल के पुत्र कीर्तिवर्म की स्तुति से किया है। इससे ब्रह्मशिव कीर्तिवर्म का समकालीन (ई० सन् ११२५) मालूम होता है। इनके गुरु मुनि वीरनन्दि ई० सन् १११५ मे स्वर्गस्थ मेघचन्द्र-त्रैविद्य के शिष्य विदित होते हैं।

ये वीरनन्दि वे ही हैं, जिन्होंने शक सवत् १०७६ (ई० सन् ११५३) मे स्वकृत आचारसार की एक कन्नड व्याख्या लिखी थी (कन्नडकविचरिते, पृष्ठ १६८)। यद्यपि श्रवणवेळगोळ के उपर्युक्त शिलालेख मे आचार्य वीरनन्दि का उल्लेख मेघचन्द्र के 'आत्मजात' के रूप मे हुआ है, श्री आर० नरसिंहाचार्य ने अपने 'कविचरिते' मे आत्मजात का अर्थ पुत्र किया है, किन्तु यहाँ पर आत्मजात शब्द का अर्थ पुत्र न करके शिष्य करना ही सर्वथा उचित है, क्योकि मुनि अवस्था मे किसी के भी साथ पुत्र, पौत्रादि पूर्व का सम्बन्ध जोडना सर्वथा आगमविरुद्ध है। जब वे एक बार सब कुछ त्यागकर एकान्ततः अकिंचन बन गये, उनके साथ पुत्रादि का पूर्व सम्बन्ध कैसे जोडा जा सकता है। वस्तुत. शिष्य के पुत्रतुल्य होने के कारण आलकारिक शब्दो मे उसे आत्मजात, आत्मज, तनुज आदि कहा जाता है।

केशिराज ने अपने 'शब्दमणिदर्पण' के ७५वें सूत्र के नीचे ब्रह्मशिव के एक पद्य के अतिम भाग को उदाहरण के रूप मे उद्धृत किया है। कवि ने जैनमार्गनिश्चितचित्त, जिनसमयसुधार्णव-धर्मचन्द्र, जिनधर्मामृतवार्धिवर्धनशशाक, तीव्रमिथ्यात्ववघनचण्डाशु आदि शब्दो द्वारा अपने गुणो को प्रकट किया है।

समयपरीक्षा मे धर्म को आप्तागमधर्म और अनाप्तागमधर्म इन दो भागो मे विभक्त किया गया है। कवि ने इसमे सौर, शैव, वैष्णव आदि धर्मों को अमान्य तथा सदोष ठहराकर जैन धर्म को सर्वोत्कृष्ट बतलाया है। ग्रथ प्रारभ से अत तक कद पद्यो मे ही रचा गया है। यह पन्द्रह अधिकारो में विभक्त है। ग्रन्थ का बध सरल एव ललित है। कन्नड साहित्य के मर्मज्ञ इस प्रकार के समीक्षाग्रथो को लिखनेवाले कन्नड कवियो मे ब्रह्मशिव को प्रथम कवि मानते हैं।

प्रत्येक विचारशील व्यक्ति इस बात को अवश्य स्वीकार करेगा कि हर एक लेखक पर देश के तत्कालीन वातावरण का प्रभाव अवश्य पड़ता है, इसे

कोई रोक नही सकता। इसलिए सर्वप्रथम ब्रह्मशिवकालीन वातावरण का अध्ययन करना बहुत ही आवश्यक है। वस्तुत' यह युग खण्डन मण्डन का युग था। कर्णाटक मे ही नही अपितु सम्पूर्ण देश मे खण्डन-मण्डन की प्रवृत्तियाँ चल रही थी अत अन्य मतो का खण्डन करके ब्रह्मशिव ने कोई अनुचित काम नही किया। पुन कोई भी धर्म अपनी सत्ता को तब ही कायम रख सकता है जब कि वह देश के तत्कालीन वातावरण के अनुकूल अपने बाह्यरूप मे कुछ-न-कुछ परिवर्तन स्वीकार करेगा। इसके लिए धार्मिक इतिहास मे एक-दो नहीं सैकडो दृष्टान्त देखने को मिलते हैं। इसी को लक्ष्य मे रखकर आचार्य जिनसेन ने अपने काल मे जैन धर्म के बाह्य रूप मे बहुत कुछ परिवर्तन कर डाला था।

इसका एकमात्र कारण देश का क्षुब्ध वातावरण ही था। वास्तव मे अगर वे उस समय रूढिवादी बने रहते तो पता नहीं कर्णाटक मे जैन धर्म की क्या स्थिति होती? आचार्य जिनसेन ने उस समय बडी ही दूरदर्शिता से काम लिया, अन्यथा बडा अनर्थ हो जाता। जैनाचार्यों में परस्पर दिखाई देनेवाले मान्यता-भेद का मूलकारण भी देश का तत्कालीन वातावरण ही है। निष्पक्ष जैनेतर विद्वानो की भी राय है कि समयपरीक्षा से तत्कालीन समाज की परिस्थिति का बोध होता है।

ब्रह्मशिव की दूसरी कृति त्रैलोक्यचूडामणिस्तोत्र है। इसमे छब्बीस (२६) वृत्त हैं। इसका अपरनाम छब्बीसरत्नमाला भी है। प्रत्येक पद्य त्रैलोक्य चूडामणि शब्द से समाप्त होता है। इसमे ब्रह्मशिव ने अन्य मतो की मान्यताओ का खुले शब्दो मे खण्डन किया है। वैसे समालोचना कोई बुरी चीज नही है, फिर भी उसमे कडे शब्दो का उपयोग न करके सौम्य शब्दो का प्रयोग आवश्यक है। किसी भी बात को कटु शब्दो की अपेक्षा मीठे शब्दो के द्वारा समझाना अधिक लाभदायी होता है। बल्कि कटु शब्दो के प्रयोग से कभी कभी बडा अनर्थ भी हो जाता है। समालोचना का भी एक स्तर होना चाहिए।

कर्णपार्य

इन्होने नेमिनाथपुराण की रचना की है। कण्णप, कण्णमय्य आदि इनके कई नाम थे। कर्णपार्य को परमजिनमतक्षीरवाराशिचन्द्र, सम्यक्त्वरत्नाकर, भुवनैकभूषण, गाम्भीर्यरत्नाकर, भव्यवनजवनमार्तण्ड आदि अनेक उपाधियाँ प्राप्त थी। इन्होंने अपनी रचना मे कही भी अपना काल नही बतलाया है। इसीलिए कर्णपार्य के काल के सम्बन्ध मे विद्वानो मे मतभेद है। आर० नरसिंहा-

पाया जाता है। अतः तगडूर का यह शिलालेख ई० सन् ११११ से ११४१ के मध्य अर्थात् ११३० मे लिखा गया था, यह मानना उचित ही है।

कवि कर्णपार्य ने अपने गुरु कल्याणकीर्ति की बडी प्रशसा की है। इससे सिद्ध होता है कि मुनि कल्याणकीर्ति वस्तुत एक असाधारण व्यक्ति थे। वे चरित्र से ही नही, किन्तु ज्ञान और गुणो से भी सम्पन्न थे। इसीलिए निखिल-विद्वत्समाज उनके समक्ष नतमस्तक था। चारो ओर उनकी निर्मल कीर्ति फैली हुई थी। अमल, स्वच्छ तथा अनिन्द्य विशेषण ही उनकी उज्ज्वलता को व्यक्त करते हैं। यही कारण है कि कर्णपार्य ने मुनि कल्याणकीर्ति को नेमिनाथपुराण के प्रत्येक आश्वास के अतिम पद्य में 'साश्चर्यचारित्र चक्रवर्ती' के रूप मे सादर स्मरण किया है। इसीलिए तो ये 'सद्भव्यससेव्य' माने गये थे। श्रवणबेळ-गोळ के शिलालेख मे भी कल्याणकीर्ति की बडी प्रशसा मिलती है। वास्तव में कर्णपार्य जैसे राजमान्य एव लोकमान्य सुकवि के गुरु सामान्य विद्वान् कैसे हो सकते थे ?

अब कवि कर्णपार्य के आश्रयदाता को लीजिए। राजा विजयादित्य का मंत्री लक्ष्म या लक्ष्मण ही कर्णपार्य का आश्रयदाता माना जाता है। कर्णपार्य ने अपने नेमिनाथपुराण मे पिता गण्डरादित्य, पुत्र विजयादित्य एव विजया-दित्य की रानी पोन्नलदेवी की बडी प्रशसा की है। बल्कि कवि ने पोन्नलदेवी को विविध कलाओ की प्रवीणता मे सरस्वती, रूप में रति, सौंदर्य में हैमवती, दर्शनविशुद्धि में रेवती और पतिभक्ति मे अरुन्धती बतलाया है। इसी प्रकार कर्णपार्य ने अपने आश्रयदाता लक्ष्मण की भी बहुत प्रशसा की है। इसी प्रसग मे कवि कर्णपार्य ने लक्ष्मण के अनुज वर्धमान और शात तथा शात के पिता गोवर्धन या गोपण का भी उल्लेख किया है। इस उल्लेख मे कवि ने वर्धमान को अखिलाशावर्तितकीर्ति, मकरध्वजमूर्ति और उर्वीनुतगुणविधान और शात को अखिलविद्याकात उर्वीजनसेव्य आदि विशेषणों के साथ स्मरण किया है। शान्त के श्रद्धेय पिता गोपण को कवि ने दर्शन प्रतिमा से लेकर परिग्रहत्याग तक की प्रतिमाओ को पालनेवाला श्रावकोत्तम बतलाया है। इसी प्रकार ग्रथात मे अपने आराध्य देव नेमिनाथ के साथ-साथ उसने लक्ष्मण के अनुज वर्धमान और शात और शात के पूज्य पिता गोपण की भी प्रशसा की है। यद्यपि ग्रथारम्भ मे लक्ष्मण की पत्नी के बारे मे कुछ भी नही कहा गया है किंतु यहाँ पर उसकी काफी प्रशसा की गई है। उसे जिन पूजा मे शची, चतुर्विध दान मे अत्तिमब्बे और जिनभक्ति मे शातलादेवी बताया

गया है। उसे शीलरत्नमण्डिता, शिष्टजनकल्पलता आदि विशेषणो से विभूषित किया गया है।

श्री आर० नरसिंहाचार्य का कहना है कि राजा गण्डरादित्य, लक्ष्मण, लक्ष्मीधर, वर्धमान और शांत इस प्रकार पाँच लडके थे। कवि कर्णपार्य का आश्रयदाता लक्ष्म अथवा लक्ष्मण विजयादित्य का सहोदर लक्ष्मण ही है। परन्तु डा० वेंकटसुब्बय्य श्री नरसिंहाचार्य के इस मत से सहमत नही हैं। उनका कहना है कि गण्डरादित्य और लक्ष्मण का पिता गोवर्धन (गोपण) भिन्न-भिन्न व्यक्ति हैं। गण्डरादित्य को विजयादित्य नामक एक ही लडका था। कर्णपार्य का आश्रयदाता लक्ष्मण केवल उसका मन्त्री था। इसके दो भाई थे वर्धमान और शांत। वेंकटसुब्बय्य का यह कथन कर्णपार्य के नेमिपुराण के कथन से बिल्कुल मेल खाता है। इसलिए मुझे भी यही कथन समुचित लगता है। वेंकटसुब्बय्य का यह मत कि विजयादित्य का कोई सहोदर भाई नही था, ई० सन् ११६५ के एकसावि के अभिलेख से मेल नही खाता है क्योंकि उसमे स्पष्ट लिखा है कि विजयादित्य गण्डरादित्य का ज्येष्ठ पुत्र था।[1] साथ ही साथ कवि कर्णपार्य के द्वारा प्रयुक्त रूपनारायण उपाधि[2] से भी मानना होगा कि इसका आश्रयदाता लक्ष्मण राजवंशीय अवश्य था क्योंकि कवि ने गण्डरादित्य तथा विजयादित्य के लिए भी इसी उपाधि का प्रयोग किया है।

नेमिनाथपुराण के सम्पादक एच० शेषअय्यंगार ने इसकी प्रस्तावना मे अन्यान्य स्थलो के कई शिलालेखो का हवाला देकर यह सिद्ध किया है कि उन शिलालेखों मे प्रतिपादित राजा विजयादित्य और कवि कर्णपार्य द्वारा नेमिनाथ पुराण मे उल्लिखित विजयादित्य ये दोनो अभिन्न हैं। इस विजयादित्य का काल ई० सन् ११४३ से ११६४ तक होना चाहिए। अब तक हमने कर्णपार्य के काल के सम्बन्ध मे विचार किया। अब देखना यह है कि कर्णपार्य का जन्म-स्थल कौन-सा है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि इसने अपनी कृति मे कहीं भी अपने जन्मस्थल, वंश और माता-पिता आदि का उल्लेख नही किया है। ऐसी अवस्था मे कवि के जन्मस्थल, वंश आदि के सम्बन्ध मे निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

नेमिनाथ के समवसरण के वर्णन मे तीर्थंकर नेमिनाथ द्वारा धर्मप्रचारार्थ

---

१ मैसूर आर्कोलाजिकल रिपोर्ट—१९१६, पृष्ठ ४८-५०।

२ नेमिनाथपुराण, आश्वास १, पद्य ३०।

विहार किए गए देशो मे सर्वप्रथम करहाट (कोल्हापुर) का नाम आया है (आश्वास १३, पद्य १०३) कर्णपार्य को करहाट के शिलाहार वंशी राजा विजयादित्य के मन्त्री लक्ष्म या लक्ष्मण का संरक्षण प्राप्त था। इसलिए विद्वानो का अनुमान है कि कोल्हापुर ही कर्णपार्य का जन्मस्थल होगा। पर बलिष्ठ प्रमाणों के अभाव मे यह मानना समुचित नही है कि कोल्हापुर ही कवि का जन्मस्थल है, क्योकि समवसरण के विवरण मे कवि ने सर्वप्रथम करहाट का नाम जो लिया है, उसका और भी कोई अदृष्ट कारण हो सकता है। अत उसके वश, माता-पितादि के सम्बन्ध मे इस समय कुछ भी नही कहा जा सकता।

अब कर्णपार्य के अमरकाव्य नेमिनाथ-पुराण के बारे मे भी दो शब्द कहना आवश्यक है। इस पुराण मे देशनिवेशवर्णन, पुण्डरीकिणी नगर का ऐश्वर्य-वर्णन, राज्यवैभववर्णन और देवगतिवर्णन (आश्वास १) चित्ताकर्षक हैं। इसी प्रकार भगवान् नेमिनाथ के गर्भावतरण एव जन्माभिषेक (आश्वास ८) वैराग्य, दान, तप, केवलज्ञानोत्पत्ति एव समवसरण वर्णन (आश्वास १३) और निर्वाण का वर्णन भी मार्मिक है। साथ ही प्रद्युम्नकुमार, पाण्डव एवं बलदेव की तपस्या का वर्णन (आश्वास १४) भी विशेष चित्ताकर्षक हैं। जहाँ तक रस का सम्बन्ध है जैन काव्य एव पुराणो का प्रधान रस शान्त रस है। परन्तु यह भी एक सर्वमान्य तथ्य है कि आस्वादको को एक ही रस से सन्तोष नही हो सकता। इसीलिए शान्तरस के साथ साथ जैनपुराणो एव काव्यो मे शृंगारादि शेष रस भी यथास्थान प्रकरणानुकूल उचित मात्रा मे निबद्ध कर दिए गए हैं। महाकवि नागचन्द्र का कथन है कि जिस प्रकार सिद्धरस से लोह सुवर्ण बन जाता है उसी प्रकार शान्तरस के सम्पर्क से पाप प्रवृत्ति के जनक शृंगारादि रस भी पुण्य का कारण बन जाते हैं। प्रस्तुत काव्य मे भी शान्तरस एव उसका स्थायीभाव निर्वेद विशेष रूप से वर्णित है। प्रथम आश्वास मे नागदत्त धूमकेतु और प्रीतिमति-चिन्तागति के वैराग्य प्रसगो मे तथा द्वितीय आश्वास मे अर्हद्दास अमितगामी अमिततेज और सुप्रतिष्ठ के वैराग्य प्रसगो मे शान्तरस, तृतीय आश्वास मे शान्तनु और पाण्डु-कुन्ति के प्रसगो मे शृंगाररस, सुप्रतिष्ठ के उपसर्ग मे करुण रस की अभिव्यक्ति हुई है। चतुर्थ तथा पचम आश्वास मे श्मशान के वर्णन में बीभत्स-रस, विवाहो के प्रसगो में शृगाररस तथा षष्ठ आश्वास मे कस के चरित्र मे मात्सर्यादि भावो के साथ-साथ वीररस की सृष्टि की गई है। सप्तम आश्वास

मे हास्य, वीर और श्रृगार के साथ-साथ अद्भुतरस का प्रयोग हुआ है। नेमिनाथ के गर्भावतरण तथा जन्माभिषेक आदि मे भक्ति के साथ अद्भुतरस पाया जाता है। नवम आश्वास से लेकर द्वादश आश्वास तक कौरव और पाण्डवो के चरित्र मे मात्सर्यादि भावो के साथ रौद्ररस की तथा बलदेव, वासुदेव, जरासंध और कौरव एव पाण्डवो के युद्ध प्रसग मे वीररस की प्रधानता है। द्वादश आश्वास के अन्त मे वीर तथा रौद्ररस, त्रयोदश आश्वास के आदि मे श्रृ गाररस और अन्त में शुद्ध शान्तरस तथा चतुर्दश आश्वास के प्रारम्भ मे शान्त, बलदेव के प्रलाप प्रसंग मे करुण एव अन्त मे स्वच्छ शान्त रस का वर्णन प्राप्त होता है।

कर्णपार्य 'वाक्य रसात्मक काव्य' इस पूर्व परम्परा के पक्के अनुयायी थे। इसीलिए कथाभाग तथा रस की ओर इनका जितना लक्ष्य था, उतना वर्णन और अलकार की ओर नही था। इनके काव्य मे वर्णन और अलकार बहुत कम हैं। कवि के अधिकाश पद्यो मे वृत्त्यनुप्रास नामक शब्दालकार ही दृष्टिगोचर होता है (आश्वास ६, पद्य ३४, आश्वास ७, पद्य १३१, आश्वास ८, पद्य १३०, आश्वास ११, पद्य ९९, आश्वास १२, पद्य ११८, १२७, १५६)।

इस पुराण मे उपमा, दृष्टान्त, रूपक, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास आदि अलकारो के उदाहरण सीमित मात्रा मे ही मिलते हैं। अलकारो मे कर्णपार्य को उपमालकार अधिक प्रिय था। इसके लिए आश्वास १०, ११ और १२ विशेष उल्लेखनीय हैं।

कर्णपार्य की शैली मे विशेषत पांचाली तथा वैदर्भी रीति ही दृष्टिगोचर होती है, यद्यपि कही-कही वीर, बीभत्स और रौद्र रस के अनुकूल गौडी रीति भी मिलती है (आश्वास १२, पद्य २७३ आदि)। स्वतन्त्र रचनाकार होते हुए भी कर्णपार्य ने प्राचीन सस्कृत एव कन्नड कवियो के भावों को भी यथावसर ग्रहण किया है। प्रतिपाद्य विषय को सुरुचिपूर्ण बनाने के लिए इन्होने सस्कृत के व्यावहारिक वाक्यो एव कहावतो को जोडकर विषय को सुन्दर बनाया है। कवि कर्णपार्य ने प्राचीन व्याकरण के नियमो का पालन अवश्य किया है, फिर भी अनेक स्थानो पर इन्होने कन्नड के नूतन रूपो को भी अपनाया है।

अन्यान्य जैन कवियो की तरह इन्होने भी वैदिक पुराणों में वर्णित त्रिमूर्ति, समुद्रमन्थन, समुद्रमन्थन से लक्ष्मी की उत्पत्ति आदि वैदिक बातो को

दृष्टान्त रूप मे ले लिया है। नेमिनाथपुराण की कथावस्तु मे केवल नेमिनाथ का चरित्र जैन परम्परा के अनुसार वर्णित है। शेष बलदेव-वासुदेव का चरित्र वैदिक भागवत कथा से, कौरव-पाण्डवो का चरित्र वैदिक महाभारत की कथा से न्यूनाधिक मिलता है। यहाँ उल्लेखनीय है कि जहाँ वैदिक पुराण मे देवकी के विवाह के पूर्व वसुदेव के चरित्र के सम्बन्ध मे कुछ भी जानकारी नही मिलती है, वहाँ नेमिनाथपुराण मे इस प्रसग पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। विस्तार के भय से वह यहाँ पर नही दिया जा रहा है। दोड्डय्य (लगभग ई० सन् १५५०), मंगरस (ई० सन् १५०८) आदि कवियो ने अपनी कृतियों मे कर्णपार्य की 'वीरेशचरित्र' नामक और एक कृति का उल्लेख किया है। किन्तु वह कृति अभी तक उपलब्ध नही हुई है।

सोमनाथ

इन्होंने कल्याणकारक नामक वैद्यक ग्रथ कन्नड मे लिखा है। मालूम होता है कि इन्हें 'विचित्रकवि' नामक उपाधि प्राप्त थी। सोमनाथ ने अपनी रचना में लिखा है कि मेरे इस ग्रथ का सशोधन सुमनोबाण तथा अभयचन्द्र सिद्धान्ती ने किया है। इस उल्लेख से स्पष्ट है कि सोमनाथ सुमनोबाण का समकालीन था। सुमनोबाण का काल लगभग ई० सन् ११५० है। सोमनाथ के इस काल की पुष्टि श्रवणबेळगोळ के लगभग ११२५ ई० के शिलालेख न० ३८४ से भी होती है। लेख मे गगराण के पुत्र बोप्प के गुरु माधवचन्द्र का उल्लेख है। इन्ही माधवचन्द्र की स्तुति सोमनाथ ने अपने ग्रथ मे की है। इसलिए श्री आर० नरसिहाचार्य के मतानुसार सोमनाथ का काल लगभग ११४० ई० है। सोमनाथ का कल्याणकारक वैद्यक ग्रथ आचार्य पूज्यपादकृत कल्याणकारक नाम के सस्कृत वैद्यक ग्रथ का ही कन्नड अनुवाद है। सोमनाथ ने वाग्भट, चरक आदि के वैद्यक ग्रथो से पूज्यपाद के 'कल्याणकारक' को श्रेष्ठ बतलाया है। साथ ही साथ इसमे यह भी लिखा है कि कल्याणकारक की चिकित्सापद्धति मे मद्य, मास तथा मधु निषिद्ध हैं। ग्रथ के प्रारम्भ मे तीर्थंकर चन्द्रप्रभ और सरस्वती के साथ माधवचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती, अभयचन्द्र कनकचन्द्र पण्डितदेव की भी स्तुति की गई है।

कवि सोमनाथ के द्वारा संस्तुत उपर्युक्त माधवचन्द्र, अभयचन्द्र और कनकचन्द्र ये तीनो समकालीन थे। इनमे से माधवचन्द्र त्रिलोकसार के टीकाकार, अभयचन्द्र गोम्मटसार की मदप्रबोधिका टीका के रचयिता और कनकनन्दि गोम्मटसार की रचना में सहायक प्रतीत होते हैं। यदि मेरा यह अनुमान

यथार्थ है तो इन आचार्यों के सम्बन्ध मे निम्नलिखित बातें जानने योग्य हैं। त्रिलोकसार के टीकाकार माधवचन्द्र आचार्य नेमिचन्द्र के शिष्य मालूम होते हैं। मूल ग्रथ मे भी इनकी कई गाथाएँ सम्मिलित हैं। बल्कि संस्कृत टीका की उत्थानिका से ज्ञात होता है कि गोम्मटसार मे भी इनकी कई गाथायें समाविष्ट की गयी हैं। सस्कृत गद्यमय क्षपणसार भी जो कि लब्धिसार मे शामिल है, इन्ही माधवचन्द्र की रचना है। सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्र के गोम्मठसार की रचना मे केवल माधवचन्द्र का ही नही अपितु आचार्य कनकनन्दि का भी सहयोग रहा है।

स्व० नाथूरामजी प्रेमी के मतानुसार गगनरेश राचमल के महामत्री चाउण्डराय, सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्र वीरनन्दि, इन्द्रनदि, कनकनदि और माधवचन्द्र इन सब का काल विक्रम सवत् १२ वी शताब्दी का पूर्वार्द्ध है।[1] ऐसी अवस्था मे नरसिंहाचार्य द्वारा अनुमित सोमनाथ के काल मे और प्रेमी जी द्वारा अनुमित काल में थोडा-बहुत अतर अवश्य पडेगा। इसका यही समाधान है कि उपर्युक्त दोनो काल केवल अनुमानित हैं। इसलिए सोमनाथ के काल में थोडा-बहुत घटाने-बढाने मे कोई बाधा उपस्थित नही होगी। कीर्तिवर्म (ई० सन् ११२५) के गोवैद्य को छोडकर आज तक के उपलब्ध सभी कन्नड वैद्यक ग्रथो में कन्नड कल्याणकारक प्राचीन एव प्रकाशनीय है।

वृत्तविलास

इन्होने धर्मपरीक्षा लिखी है। प्राचकाव्यमालिका मे प्रकाशित शास्त्रसार के कुछ अशो से पता लगता है कि इन्होने शास्त्रसार नामक एक अन्य ग्रथ भी रचा है। कवि ने अपनी रचना मे अपने सम्बन्ध मे कुछ भी नही लिखा है। अत कवि के कालनिर्णय का आधार उनके द्वारा स्तुत गुरुपरम्परा ही है। इस गुरुपरम्परा मे इन्होने व्रती शुभकीर्ति, सिद्धाती माधवनदि, यति भानुकीर्ति, धर्मभूषण, अमरकीर्ति, वागीश्वर और अभयसूरि नाम गिनाये हैं। श्री आर० नरसिंहाचार्य ने उपर्युक्त आचार्यों के काल के आधार पर वृत्तविलास का काल ई० सन् ११६० निर्धारित किया है। कवि के सम्बन्ध मे विशेष कुछ भी ज्ञात नही है। वृत्तविलास के श्रद्धेय गुरु अमरकीर्ति हैं। आचार्य अमितगतिकृत धर्मपरीक्षा को ही वृत्तविलास ने कन्नड भाषा भाषियो

---

१ जैन साहित्य और इतिहास, पृष्ठ ३००।

के हितार्थं कन्नड मे लिखा है। इस बात को कवि ने अपनी रचना मे स्वयं स्वीकार किया है।

धर्मपरीक्षा चम्पू ग्रथ हैं। इसमे दश आश्वास हैं। ग्रथ की शैली सुगम एव ललित है। कथा कहने का ढग भी चित्ताकर्षक है। फिर भी कुछ समय के उपरात वृत्तविलास की यह धर्मपरीक्षा नामकृति सामान्य जनता को कठिन लगने लगी। इसलिये स्थानीय श्रावको ने श्रवणबेळगोळ के तत्कालीन मठाधीश चारुकीर्ति जी से इसकी कन्नड व्याख्या तैयार करने के लिए प्रार्थना की। इस कार्य के लिए चारुकीर्ति जी ने चंद्रसागर जी को आज्ञा दी। तद्नुसार चद्रसागरजी ने शा० श० १७७० में सुलभ कन्नड गद्य मे धर्मपरीक्षा को रूपातरित किया। चद्रसागर जी की धर्मपरीक्षा मे भी दश अध्याय हैं। इस प्रकार कन्नड मे अभी तक धर्मपरीक्षा सम्बन्धी ये ही दो रचनाएं उपलब्ध हैं। प्राकृत, अपभ्रंश और सस्कृत भाषाओ मे इसी विषय को निरूपित करनेवाले धर्मपरीक्षा नाम के कई ग्रंथ उपलब्ध होते हैं। उनमे निम्नलिखित ग्र थ प्रमुख हैं—

जयराम नामक कवि ने गाथाप्रवध मे एक 'धर्मपरीक्षा' की रचना की थी। वह प्राय: प्राकृत भाषा मे रही होगी। किंतु इस धर्मपरीक्षा की कोई भी प्रति अभी तक उपलब्ध नही हुई है। इसी के आधार पर हरिषेण ने भी अपभ्र श भाषा मे धर्मपरीक्षा नामक ग्र थ लिखा था। ये हरिषेण मेवाडदेश-वासी गोवर्धन एव उनकी धर्मपत्नी गुणवती के पुत्र थे। हरिषेण कार्यवश चित्रकूट से अचलपुर गये और वहाँ पर उन्होने छद, अलकार आदि का अध्ययन कर वि० स० १०४४ मे अपभ्र श धर्मपरीक्षा की रचना की। हरि-षेण के गुरु सिद्धसेन थे और उन्ही की कृपा से यह धर्मपरीक्षा लिखी गयी थी। इसमें सदेह नही है कि जयराम हरिषेण के पहले हुए हैं। इसी के बाद माधवसेन के शिष्य आचार्य अमितगति ने वि० स० १०७० में सस्कृत धर्म-परीक्षा की रचना की। अमितगति की धर्मपरीक्षा हरिषेण की धर्मपरीक्षा से २६ वर्ष बाद की रचना है।

जयराम की धर्मपरीक्षा की कोई प्रति नही मिली है। हरिषेण की धर्म-परीक्षा भी अभी हस्तलिखित अवस्था मे ही है। परतु अमितगति की धर्म-परीक्षा मुद्रित हो चुकी है, मात्र यही नही, इसका सार हिंदी, मराठी आदि भाषाओ मे भी प्रकाशित हो चुका है। अमितगति का अनुकरण करते हुए

और उनके ग्रंथ से बहुत से अशो को हू-ब-हू लेकर वि० स० १६४५ मे कवि पद्मसागर ने भी एक धर्मपरीक्षा की रचना की थी, जो कि मुद्रित हो चुकी है।[1] वृत्तविलास की धर्मपरीक्षा के अभ्यासियो को अमितगति की धर्मपरीक्षा का परिचय देना आवश्यक है, क्योकि वृत्तविलास ने अमितगति के ग्रथ के आधार पर ही अपने ग्रथ की रचना की है। अमितगति एक प्रौढ कवि थे। सस्कृत भाषा पर उनका पूर्ण अधिकार था। वे आशुकवि भी थे। सस्कृत मे उन्होने कई ग्र थ रचे हैं। डा० उपाध्ये का अनुमान है कि जयराम के प्राकृत ग्रंथ का अनुकरण करके ही अमितगति ने अपनी सस्कृत धर्मपरीक्षा को रचा होगा।

धर्मपरीक्षा की रचना-प्रक्रिया का पूर्णरूपेण अनुकरण करनेवाला एक ग्रथ और है। उसका नाम धूर्ताख्यान है। यह ग्रथ मुद्रित हो चुका है। धूर्ताख्यान प्राकृत भाषा का एक लघुकाय ग्रन्थ है। उसके रचयिता हरिभद्र हैं हरिभद्र एक महान् कवि हैं। उनका काल ७वी शताब्दी है। उन्होने सस्कृत एव प्राकृत भाषाओ मे अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थो की रचना की है। हरिभद्र एक विचक्षण कवि ही नहीं थे अपितु अप्रतिम नैयायिक तथा कुशल कथाकार भी थे। हरिभद्र ने एक ही तरह की विविध कथाओ का वैदिक पुराणो से सग्रह कर उन कथाओ की असबद्धता को स्पष्ट किया है। असबद्ध कथाओ एव उन पर विश्वास करनेवालो के अधविश्वास का उपहासात्मक विवरण हरिभद्र ने अपनी इस रचना मे बडी कुशलता से प्रस्तुत किया है।

भारतीय वाङ्मय मे पूर्णतया उपहासपरक कृतियाँ दुर्लभ ही हैं। नाटको एव धर्मग्रथो मे भी कही-कही उपहासात्मक प्रसग पाये जाते हैं, किन्तु धूर्ताख्यान सदृश शुद्ध, बौद्धिक एव उपहासपरक ग्रथ प्राचीन भारतीय वाङ्मय मे दूसरा नही है। धर्माभिनिवेश को छोडकर प्राचीन वाङ्मय के अभ्यासियो के लिए यह एक दुर्लभ रत्न है।[2] धूर्ताख्यान की भाषा सुगम एव प्राचीन है। वृत्तविलास की धर्मपरीक्षा की पृष्ठभूमि को स्पष्ट रूप मे समझने के लिए अमितगति की धर्मपरीक्षा तथा हरिभद्र के धूर्ताख्यान का परिशीलन आवश्यक है।

वृत्तविलास की धर्मपरीक्षा का प्रारभ इस प्रकार होता है—मनोवेग

---

१ 'प्रबुद्ध कर्णाटक' रजतजयती अक मे प्रकाशित डा० ए० एन० उपाध्ये का धर्मपरीक्षा सम्बन्धी लेख देखें।

२ एदतर्थं प्रबुद्ध कर्णाटक रजत जयती अक देखें।

और पवनवेग नाम के दो राजकुमार पाटलीपुर जाकर वहाँ के ब्रह्मालयस्थ नगाडे को बजाकर वहाँ रखे हुए सिंहासन पर बैठ जाते हैं। इसके बाद ब्राह्मण विद्वानो द्वारा उन्हे यह ज्ञात होता है कि जो विद्वान् इस नगाडे को बजाकर शास्त्रार्थ मे विजय प्राप्त करते हैं, वे ही इस सिंहासन पर बैठने के अधिकारी होते हैं। अत बतलाइए कि आपलोग किस विषय के विशेषज्ञ हैं। इस बात को सुनकर राजकुमारो ने जवाब दिया कि 'हम विद्वान् नही हैं। किन्तु यो ही आकर इस सिंहासन पर बैठे हैं। इतना कहकर वे सिंहासन से उठकर नीचे बैठ जाते हैं।' बाद मे उन राजकुमारो ने ब्राह्मण विद्वानो को जैन धर्म का स्वरूप समझाया और उनके धर्म का अनेक प्रकार से निराकरण कर जयपत्र प्राप्त किया।

नागवर्म (प्रथम)

उन्होने छन्दोबुधि एव कर्णाटक कादम्बरी की रचना की है। उन्हें वीर-मार्तण्ड चाउण्डराय का सरक्षण प्राप्त था। वे आचार्य अजितसेन के शिष्य थे। आर० नरसिंहचार्य के मत से इनका समय लगभग ९९० ई० है।

महाकवि पम्प तथा पोन्न की तरह यह भी वेंगिविषय के निवासी थे। नागवर्म के पिता वैण्णमय्य वैदिक ब्राह्मण थे यद्यपि नागवर्म जैनधर्म के अनुयायी हो गये थे। पम्प एव पोन्न की तरह इन्होंने किसी धार्मिक ग्रन्थ की रचना नहीं की है। इन्होने अपने को युद्धवीर और सत्कवि कहा है। कन्नड साहित्य मे कादम्बरीसदृश उत्कष्ट रचना दूसरी नही मिलती है। बाणभट्ट की सस्कृत में रचित कादम्बरी काव्यमय गद्य में है और वह अनेक स्थलो पर दुर्बोध बनी हुई है। ऐसी महाकृति को चम्पूरूप मे कन्नड मे लिखनेवाले नागवर्म वास्तव में अभिनन्दनीय हैं। नागवर्म का यह ग्रथ सस्कृत मे रचित कादम्बरी का मात्र कन्नड अनुवाद नहीं है। इसमे अनेक वर्णन छोड भी दिये गये हैं। फिर भी मूल के सौन्दर्य की रक्षा करते हुए नागवर्म ने इसे अपने ही ढग से एक स्वतत्र कृति का रूप प्रदान किया है। कवि की भाषा सुगम एव सशक्त और कथा-निरूपण प्रवाहमय है। नागवर्म की दूसरी कृति छन्दोबुधि छन्दशास्त्र से सम्बन्धित एक सुन्दर कृति है।

नागवर्म (द्वितीय)

इन्होंने काव्यावलोकन, कर्णाटकभाषाभूषण, वस्तुकोश और अभिधान-रत्नमाला नामक ग्रथो की रचना की है। ये सभी ग्रन्थ विद्वत्तापूर्ण एवं

कन्नड भाषा के अध्येताओ के लिए अत्यन्त उपयोगी लक्षण ग्रन्थ हैं। विद्वानो की राय में इनका समय लगभग ११४५ ई० है। नागवर्म के नाकिग और नाकि नाम भी थे।[१] यह जैन ब्राह्मण थे।[२] इनके पिता का नाम दामोदर था।[३] इन्हें अभिनव शर्ववर्म कविकर्णपूर कविता गुणोदय और कवि कठाभरण नामक उपाधियाँ प्राप्त थी।[४]

आचण्ण, जन्न, साळव और देवोत्तम आदि कवियो ने भी इनकी स्तुति की है। महाकवि जन्न (ई सन् १२०९) के कथनानुसार इनका एक ग्रथ जिनपुराण भी था। परतु अभी तक ग्रथ उपलब्ध नहीं हुआ है। कवि ने अपनी रचनाओ में अपने को एक असाधारण पडित तथा अनेक राजसभाओ मे प्रतिष्ठा अर्जित करने वाला बताया है। नागवर्म ने अपने निवासस्थान एव समय आदि के बारे मे कुछ भी नहीं लिखा है।

कन्नड लक्षण ग्रथ रचनेवालो में नागवर्म (द्वितीय) नायक मणि तुल्य हैं। इन्होने कन्नड भाषा से सम्बधित सभी क्षेत्रो की अनुपम सेवा की है। कवि का काव्यावलोक नामक प्रथम ग्रंथ अलकारशास्त्र का महत्त्वपूर्ण ग्रथ है। यह ग्रथ नृपतु ग के कविराजमार्ग से अधिक परिपूर्ण है। इसमें सूत्रो को कद पद्यो मे देकर पूर्व कवियों के ग्र थो से उदाहरण दिये गये हैं। यह ग्र थ निम्न-लिखित पाँच अधिकरणो मे विभक्त है—

(१) शब्दस्मृति नामक प्रथम अधिकरण मे सधिप्रकरण, नामप्रकरण, समासप्रकरण, तद्धितप्रकरण और आख्यानप्रकरण नामक पाँच प्रकरणो मे कन्नड भाषा के व्याकरण का शास्त्रीय एव लालित्यपूर्ण निरूपण है। कन्नड व्याकरण के लिए शब्दस्मृति प्रथम रचना है।

(२) काव्यमलव्यावृत्ति नामक द्वितीय अधिकरण के पदपदार्थसधिदोष-विनिश्चय और वाक्यवाक्यार्थदोषानुकीर्तन नामक दो प्रकरणो मे पद और वाक्यो की रचना मे होनेवाले दोषो को बताया गया है।

(३) गुणविवेकाधिकरण नामक तृतीय अधिकरण व मार्गविभागदर्शन,

---

१ अभिधानवस्तुकोश, पद्य ३६।

२ काव्यावलोकन की प्रशस्ति।

३. कर्णाटककविचरिते, भाग १, पृष्ठ १४४।

४ काव्यावलोकन और वस्तुकोश।

शब्दालकारनिर्णय और अर्थालकारनिर्णय नामक तीन प्रकरणो मे समसश्लिष्ट आदि दश गुणों एव शब्दालकारो का अनुक्रम से विवेचन है।

(४) रीतिक्रमरसनिरूपणाधिकरण नामक चतुर्थ अधिकरण मे रीतिप्रकरण और रसप्रकरण नामक दो प्रकरण हैं।

(५) कविसमयाधिकरण नामक पञ्चम अधिकरण मे असदाख्याति, सद्-कीर्तन, नियम, अर्थ और ऐक्य नामक पाँच प्रकरण हैं। यहाँ इन सबका विस्तृत वर्णन करना सम्भव नही है। नागवर्म के मत से कृतियाँ तीन प्रकार की होती हैं–पद्यमय, गद्यमय और मिश्रित। कथा अथवा आख्यायिका गद्यमय एव सर्वविध काव्य पद्यमय तथा चपू गद्यपद्यमिश्रित होता है। नागवर्म (द्वितीय) ने अपने काव्यावलोकन की रचना मे प्रसिद्ध सस्कृत लाक्षणिक वामन, रुद्रट, भामह और दण्डी का अनुकरण किया है। कवि का दूसरा ग्रथ कर्णाटक भाषा-भूषण हैं। यह सस्कृत भाषा में रचित कन्नड व्याकरण ग्रथ है। सम्भवत कन्नड से अनभिज्ञ सस्कृत विद्वानो को कन्नड भाषा के सामर्थ्य एवं सौन्दर्य का परिचय देने के लिए नागवर्म ने यह प्रयास किया होगा। आगे चलकर भट्टारक अकलक (ई० सन् १६०४) ने भी शब्दानुशासन नामक एक व्याकरण ग्रन्थ की रचना की थी। भाषाभूषण मे सज्ञा, सधि, विभक्ति, कारक, शब्दरीति, समास, तद्धित, आख्याननियम, अव्ययनिरूपण और निपातनिरूपण नामक दस परिच्छेद हैं।

नागवर्म का तीसरा ग्रथ अभिधानवस्तुकोश है। यह कन्द वृत्तो मे रचित सस्कृत-कन्नड कोश है। कन्नड मे उपलब्ध वृहद् कोशो मे यह प्रथम कोश है। एकार्थकाड, नानार्थकाड और सामान्यकाड, इस प्रकार इस कोश मे तीन विभाग हैं। इसमे प्राचीन कन्नड कवियो के द्वारा प्रयुक्त सस्कृत पदो का कन्नड मे अर्थ दिया गया है। इसमे कवि ने वररुचि, हलायुध आदि की कृतियो से सहायता ली है। इनका चौथा ग्रथ अभिधानरत्नमालाटीका है। इसमे हलायुधकृत अभिधानरत्नमाला नामक सस्कृत कोश के सस्कृत शब्दो के समानार्थक कन्नड शब्द दिये गये हैं। इस टीका मे टीकाकार नागवर्म ने हलायुध के विभागक्रम का ही अनुसरण किया है। कन्नड काव्यो मे प्रयुक्त सस्कृत शब्दों के अर्थ को जानने के लिए यह टीका विशेष उपयोगी है।

नेमिचन्द्र

इस युग में परम्परागत चम्पूशैली का अधिक अनुसरण होने लगा था। किन्तु जहाँ पम्पयुग के चम्पूकाव्य में वीररस की व्यंजना प्रधान थी, वहाँ इस युग की रचनाओं में शृंगाररस की अभिव्यक्ति अधिक होने लगी थी। पम्पयुग के महाकाव्य के आदर्श का अनुकरण करनेवाले कवियों में नेमिचन्द्र का नाम सबसे पहले आता है। श्रेष्ठ चम्पू महाकवियों की पंक्ति में नेमिचन्द्र भी एक हैं। कर्णपार्य का आश्रयदाता सामंत रट्ट राजा लक्ष्मणदेव ही नेमिचन्द्र का भी आश्रयदाता है। कवि का कहना है कि वीरबल्लाल (ई० सन् ११७३-१२२०) के प्रधान पद्मनाभ ने इस नेमिनाथपुराण को रचवाया है। इस आधार पर नेमिचन्द्र का समय लगभग ११७० ई० है। इन्हें कविराजकुंजर, साहित्यविद्याधर, सुकविकंठाभरण, भारतीचित्तचोर, चतुर्भाषाकवि चक्रवर्ती, वाग्वल्लभ शैविक आदि उपाधियाँ प्राप्त थीं। आश्चर्य यह है कि जहाँ नेमिचन्द्र ने अपने पूर्व कवियों का स्मरण करते हुए किसी भी कन्नड कवि का उल्लेख नहीं किया है, वहीं जन्न, पार्श्व, मधुर, मंगरस आदि कन्नड कवियों ने इनकी बड़ी प्रशंसा की है।

शृंगाररस के वर्णन में नेमिचन्द्र सिद्धहस्त हैं। वस्तुतः इनके कविता सामर्थ्य में स्वाभाविकता है। असाधारण शब्दसंपत्ति एवं प्रवाहमय गंभीर शैली ने इनकी रचनाओं को विशेष रूप से हृदयस्पर्शी बना दिया है। नेमिचन्द्र ने नेमिनाथपुराण नामक धार्मिक काव्य की और लीलावति नामक लौकिक काव्य की रचना की है। लीलावति इनकी पहली रचना है। यह काव्य शृंगाररसप्रधान है। नेमिनाथपुराण लीलावति की अपेक्षा बृहत्काय और एक सफल रचना है। १४वीं शताब्दी के अंत में होनेवाले कवि मधुर ने नेमिचन्द्र की कवित्वकुशलता के सम्बन्ध में लिखा है कि 'यह कोई गर्वोक्ति नहीं है अपितु सर्वानुमोदित तथ्य है कि लौकिक एवं धार्मिक रचनाओं के लिए कन्नड कवियों में नेमिचन्द्र तथा जन्न उल्लेखनीय हैं। ये दोनों कन्नड की कृतियों के लिए सीमापुरुष माने जा सकते हैं।"

लीलावति कन्नड साहित्य की प्रथम शृंगारिक रचना है। इसकी कथावस्तु सुबंधुरचित वासवदत्ता पर आधारित प्रतीत होती है। वनवासि का

राजकुमार कदर्पदेव स्वप्न मे किसी सुन्दरी को देखता है और उसकी खोज मे अपने साथी मकरंद के साथ निकल पडता है। स्वप्न में गोचर हुई वह सुन्दरी कुसुमपुर के नरेश शृगारशेखर की कन्या लीलावति थी। लीलावति भी स्वप्न देखती है और प्रिय कन्दर्पदेव के अन्वेषण मे दूत भेजती है। कई विघ्न बाधाएँ पार करने के बाद नायक-नायिका का मिलन होता है। शृंगार के चित्रण मे कवि ने कई नई उद्भावनाएँ की हैं और कथाप्रवाह को रोचक बनाया है। 'स्त्रीरूप ही रूप है, शृ गार ही रस है' यह नेमिचन्द्र की मान्यता थी। यह रचना एक वर्ष मे पूरी हुई।

बाहुबलि (ई० सन् १५००) के नागकुमारचरित, दोड्डय्य (ई० सन् १५५०) के चन्द्रप्रभ चरित और देवचन्द्र (ई० सन् १८३८) की राजावलीकथा मे लीलावति की बडी प्रशसा की गई है। जिस प्रकार कन्नड साहित्य को नागवर्म के द्वारा कादबरी जैसी सुन्दर कृति मिली है, उसी प्रकार नेमिचन्द्र द्वारा लीलावति जैसी रचना प्राप्त हुई। लीलावति की कथा छोटी है। यह शृगाररसप्रधान रचना है। उद्दीपन के लिए कृति मे सर्वत्र चित्ता-कर्षक वर्णन भरे पडे हैं इसमे कदर्प और लीलावती का पात्रचित्रण बहुत ही सुन्दर हुआ है।

नेमिनाथपुराण नेमिचन्द्र की प्रसिद्ध रचना है। इसमें २२वें तीर्थंकर नेमिनाथ के चरित्र के साथ-साथ वसुदेव, अच्युत, कदर्प आदि के चरित्र के समावेश का सकल्प तो कवि ने किया था, परन्तु कसवध के प्रकरण के बाद काव्य समाप्त हो गया है। काव्य अधूरा होने के कारण ही इसका नाम अर्ध नेमिपुराण पड़ गया है। कवि ने कृष्ण की कथा के चित्रण में काव्य रसायन की सृष्टि ही कर डाली है। त्रिविक्रम वेषधारी वामन का विराट् रूपचित्रण, गोवर्धनलीला का प्रसग और मल्लयुद्ध जैसे प्रसग बडे सरस बन पड़े हैं। कवि की वर्णनशैली अपूर्व है। इसी विषयवस्तु को लेकर इसके पूर्व कर्णपार्य ने चम्पू मे और चाउण्डराय ने गद्य मे काव्यरचना की है। नेमिचन्द्र ने इन दो पुराणो के अतिरिक्त उत्तरपुराण का भी अनुसरण किया है। काव्यदृष्टि से उपर्युक्त दो कन्नड पुराणो की अपेक्षा नेमिनाथपुराण श्रेष्ठ है। इसमे नेमिचन्द्र का पात्ररचनाकौशल निखरा है।

कवि नेमिचन्द्र सस्कृत के भी अच्छे विद्वान् थे। इनकी चतुर्भाषा कवि चक्रवर्ती की उपाधि से ज्ञात होता है कि नेमिचन्द्र कन्नड के ही नहीं, अपितु सस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रश भाषा के भी ज्ञाता कवि थे। कवि ने स्वयं को

कृति निर्वाणलक्ष्मीपतिनक्षत्रमालिका २७ वृत्तो की एक लघुकलेवर कृति है। प्रत्येक पद्य 'निर्वाणलक्ष्मीपति' से समाप्त होता है। ग्रन्थारम्भ मे दिये गये पद्य से ज्ञात होता है कि इसकी रचना भव्य-जनो की प्रेरणा से की गयी थी। बहुत सम्भव है कि बोप्पण ने इन लघु कृतियो के अतिरिक्त कोई महत्त्वपूर्ण अन्य वृहत् ग्रथ भी रचा हो, क्योकि पार्श्व आदि समाजमान्य कवियो ने इसकी बडी प्रशसा की है। केशिराज ने भी अपनी कृति मे उदाहरणस्वरूप इनकी कृतियो से पद्यो को लिया है। स्वय कवि ने भी अपने को स्पष्ट रूप से 'सुकविसमाजनुत' कहा है।

अग्गल

इन्होने चन्द्रप्रभपुराण की रचना की है। यह भी मूलसघ-देशीयगण-पुस्तकगच्छ कुन्दकुन्दान्वय के हैं। इनके पिता शातीश, माता पोचाम्बिका और गुरुश्रुतकीर्ति त्रैविद्य थे। कवि इगलेश्वरनिवासी है। इन्हे भारतीभाल्नेत्र, काव्यनौकर्णधार, साहित्यविद्याविनोद आदि कई उपाधियाँ प्राप्त थी। अग्गल किसी आस्थान के प्रमुख कवि भी थे। यह बात इनकी कृति से ही सिद्ध होती है। इन्होने चन्द्रप्रभपुराण की रचना ई० सन् ११८९ मे की थी। कवि ने अपने पूर्ववर्ती कवियो मे पप, पोन्न और रन्न का स्मरण किया है। दूसरी ओर आचण्ण, देवकवि, अण्डय्य, कमलभव, बाहुबलि, पार्श्व आदि कवियो ने इनकी प्रशसा की है।

अग्गल का चन्द्रप्रभपुराण १६ आश्वासो मे विभक्त है। एक शिलालेख से[1] विदित होता है कि यह पुराण उन्होने अपने श्रद्धेय गुरु श्रुतकीर्ति की आज्ञा से ही रचा है। कन्नड मे उपलब्ध तीर्थंकर चन्द्रप्रभ सम्बन्धी कथा ग्रथो मे यह प्रथम रचना है। कवि ने इस रचना की बडी प्रशसा की है। १२वी शताब्दी के अन्य चम्पू ग्रथो की तरह यह भी सस्कृतभूयिष्ठ हो, सुदृढ बन्ध से अधिक प्रौढ बना है। इसमे सन्देह नही है कि अग्गल कविहृदय हैं और उनके वर्णनो मे कल्पनाविलास है। इन्होने अपने समय के वीरतापूर्ण जीवन पर भी प्रकाश डाला है, यद्यपि इसकी रचना शैली बहुत क्लिष्ट है। चन्द्रप्रभपुराण मे भवावलियाँ नही हैं, इसलिए कथा समझने मे कठिनाई नही होती है।

आचण्ण

इन्होने वर्धमानपुराण तथा श्रीपदाशीति की रचना की है। ये भारद्वाज गोत्रीय हैं। इनके पिता केशवराज, माता मल्लाम्बिका और गुरु नन्दियोगीश्वर

1 बिळिगि शासन (१५९२)।

थे। आचण्ण पुलिगेरे के निवासी थे। 'वसुधैकबान्धव' उपाधिधारी चमूपति रेचण की सत्प्रेरणा से कवि के पिता केशवराज तथा उनके मित्र तिक्कण चामण, इन दोनो ने मिलकर वर्धमानपुराण लिखना प्रारभ किया था। परन्तु बीच मे ही केशवराज के देहावसान हो जाने के कारण यह कार्य आगे नही बढा। बाद मे रेचण की प्रेरणा से आचण्ण ने इसे पूर्ण किया।

आचण्ण को 'वाणीवल्लभ' नामक उपाधि प्राप्त थी। उपर्युक्त चमूपति रेचण पहले कलचुरियो के यहाँ और बाद मे होय्सल शासक वीर बल्लाल (ई० सन् ११७३-१२२०) के यहाँ मत्री जैसे उत्तरदायित्वपूर्ण उच्च पद पर सम्मानपूर्वक आसीन थे (आरसिकेरे शिलालेख ७७)। मद्रास प्राच्य ग्रथकोशलयस्थ एक अभिलेख से ज्ञात होता है कि आचण्ण के गुरु नन्दियोगीश्वर ई० सन् ११८९ मे विद्यमान थे। विद्वानो ने आचण्ण का समय ई० सन् ११९५ निर्धारित किया है।

कवि ने अपनी रचना मे पूर्व कवियो मे श्री विजय, गजाकुश, गुणवर्म, नागवर्म, असग, हृप, पोन्न, अग्गल और बोप्प की स्तुति की है। कवि पार्श्व ने श्री गुणवर्म, कीर्तिकलागर्भ, जैनागमगर्भ, जगद्गुरु, प्रसन्नगुण, मृदुहृदय आदि विशेषणो से आचण्ण की बडी प्रशसा की है। इसमे सन्देह नही है कि ये एक प्रौढ कवि हैं। इनकी रचना मे १२वी शताब्दी के अन्य चपू काव्यो की अपेक्षा शब्दालकार अत्यधिक है। आचण्ण का वर्धमानपुराण अतिम तीर्थंकर वर्धमान (महावीर स्वामी) के चरित्र से सम्बन्धित है। यह २६ आश्वासो मे विभक्त है। तीर्थंकर वर्धमान के चरित्र के सम्बन्ध मे लिखी गई कन्नड कृतियो में यह ग्रथ प्रथम है। आचण्ण ने अपनी दूसरी कृति श्री पदाशीति मे पचपरमेष्ठियो की महिमा गायी है। इसमे ९४ कन्द पद्य हैं। यह भक्तिरस से परिपूर्ण एक सुन्दर रचना है। ग्रथ का बध प्रौढ है। इसकी प्रशसा कवि ने स्वयं की है।

महावीरचरित्रप्रतिपादक स्वतत्र सस्कृत कृतियो मे महाकवि असग (विक्रम सवत् ११वी शताब्दी) का वर्धमानपुराण तथा आचार्य सकलकीर्ति (विक्रम सवत् १५वी शताब्दी) का वर्धमानचरित्र ये दोनो पर्याप्त प्रसिद्ध हैं। वर्धमानपुराण सोलापुर से और वर्धमानचरित्र का मात्र हिन्दी अनुवाद बवई से प्रकाशित हुआ है। कन्नड ग्रथो में आचण्ण के इस वर्धमानपुराण के अतिरिक्त कवि पद्म (विक्रमीय ११वी शताब्दी) का एक अन्य वर्धमानपुराण भी उपलब्ध है। साहित्य की दृष्टि से कवि पद्म का ग्रथ भी एक सुन्दर रचना है।

वधुवर्म

इन्होंने 'हरिवंशाभ्युदय' तथा 'जीव संबोधन' की रचना की है। ये वैश्य कवि हैं। कवि ने अपनी रचना मे अपने वर्ण के अतिरिक्त जन्मस्थल, माता-पिता आदि अन्य किसी भी बात का उल्लेख नही किया है। कवि कमलभव (लगभग १२३५ ई०) ने अपनी रचना मे स्वर्गवासी वधुवर्म का स्मरण किया है, इससे ज्ञात होता है कि वधुवर्म कमलभव के पूर्ववर्ती थे। आर० नरसिंहाचार्य के मत से इनका समय ई० सन् बारहवीं शताब्दी है।

नागराज, मगरस आदि कवियो ने वधुवर्म की बडी प्रशसा की है। किन्तु आश्चर्य की बात यह है कि वधुवर्म ने अपनी रचना मे किसी भी पूर्व कवि का स्मरण नहीं किया है। बल्कि इन्होने अपने कवि चातुर्य की प्रशसा स्वय की है। हरिवशाभ्युदय मे २२वें तीर्थंकर नेमिनाथ का चरित्र सुन्दर ढग से वर्णित है। इसमे २४ आश्वास हैं। ग्रथ की शैली सहज एव सुन्दर है। कवि का बध ललित और कल्पनाविलास चित्ताकर्षक है। इसमे सन्देह नही है कि इस रचना मे सौंदर्य और लालित्य दोनो ही उपस्थित हैं।

वधुवर्म का दूसरा ग्रथ जीवसबोधन है। यह नीतिवैराग्यबोधक ग्रंथ है। इसमे १२ अधिकार हैं। जैनसाधना मे १२ अनुप्रेक्षाओ का स्थान बहुत ऊँचा है। वस्तुत. ये ही मानव को वैराग्य की पराकाष्ठा पर पहुँचाती हैं। तीर्थंकर भी इन्ही के द्वारा अपनी वैराग्य दशा को पुष्ट करते हैं। पापभीरु एव सच्चा धर्मश्रद्धालु व्यक्ति प्रतिदिन नियम से इन अनुप्रेक्षाओ का स्मरण करता है। अनुप्रेक्षा का अर्थ है वस्तु स्वभाव का गहन चिंतन। जब वस्तुस्वभाव का चिंतन गहन एव तात्त्विक होगा तो रागद्वेष आदि वृत्तियाँ क्षीण होती जायेंगी। जिन विषयो का चिंतन हमारी रागद्वेष की वृत्तियो के शोधने मे विशेष उपयोगी हो सकता है, ऐसे बारह विषयो को चुनकर उनके चिंतन को ही बारह अनुप्रेक्षाओ के रूप मे गिनाया गया है। अनुप्रेक्षाओ को भावना भी कहते हैं।

वंधुवर्म ने जीवसबोधन मे इन अनुप्रेक्षाओ का बहुत ही सरल, स्वाभाविक एव चित्ताकर्षक ढग से वर्णन किया है। इसमें सन्देह नही है कि कवि अपने कार्य में पूर्ण सफल हुआ है। अध्यात्मप्रेमी-जैनेतर विद्वान् भी इस ग्रथ की मुक्तकठ से प्रशसा करते हैं। इसमे धर्म के साथ ही साथ सोदाहरण नीति की शिक्षा दी गई है। ग्रथ की शैली ललित एव सुन्दर है। तमिल भाषा मे भी इसी नाम का एक ग्र थ है। प्राय दोनो के विषय मिलते-जुलते हैं। जीव-संबोधन का हिन्दी-अनुवाद होना चाहिये।

पार्श्वपण्डित

इन्होंने पार्श्वनाथपुराण की रचना की है। इनके पिता लोकणनायक, माता कामियक्क, अग्रज नागण और गुरु वासुपूज्य हैं। कवि ने पार्श्वनाथपुराण को ई० सन् १२२२ मे रचा है। मालूम होता है कि पार्श्व सौंदत्ति के शासक कार्तवीर्य चतुर्थ (ई० सन् १२०२-१२२०) की सभा मे आस्थान कवि थे क्योकि इन्होंने अपनी रचना मे अपने को स्पष्ट रूप से कार्तवीर्य का आस्थानकवि घोषित किया है। कवि पार्श्व का समकालीन रट्टवशीय शासक कार्तवीर्य चतुर्थ ही है।

कवि ने राजा लक्ष्मण को कार्तवीर्य का पुत्र बतलाया है। अन्यान्य शिलालेखो से सिद्ध होता है कि राजा लक्ष्मण ई० सन् १२२९ मे शासनारूढ़ था। उपर्युक्त उल्लेखो के अतिरिक्त रायल ऐशियाटिक सोसाइटी की बम्बई शाखा के जर्नल (भाग १०, पृष्ठ २२०) मे प्रकाशित एक शिलालेख के अतिम पद्यमे उस शिलालेख के लेखक का नाम पार्श्व बतलाया गया है। उक्त शिलालेख ई० सन् १२०५ मे लिखा गया था। इसमे कू डि मण्डलान्तर्गत वेणुग्राम के रट्टान्वय शासक कार्तवीर्य तथा मल्लिकार्जुन का उल्लेख है। इसके साथ ही कार्तवीर्य द्वारा मण्डलाचार्य शुभचन्द्र भट्टारक को दिये गये दान का भी उल्लेख है। ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त शिलालेख कवि पार्श्व द्वारा स्तुत कार्तवीर्य के शासनकाल मे ही लिखा गया होगा क्योकि पार्श्व की रचनाओ मे उनके लिए प्रयुक्त 'कविकुलतिलक' की उपाधि शिलालेख के अंतिम पद्य मे भी मौजूद है।

पार्श्व को सुकविजनमनोहर्षसस्यप्रवर्ष, विविधजनमन पद्मिनीपद्ममित्र तथा कविकुलतिलक की उपाधियाँ प्राप्त थी। इन्होने पूर्व कवियो मे पप, पोन्न, रन्न, कर्णपार्य, गुणवर्म आदि कन्नड कवियो का तथा धनजय एव भूपाल नामक सस्कृत कवियो का सादर स्मरण किया है। धनजय 'द्विसधानकाव्य' के एव भूपाल 'जिनचतुर्विंशतिका' के रचयिता मालूम होते हैं। महाकवि धनजय अपने द्विसधानकाव्य के कारण विख्यात हैं। इस काव्य का अपरनाम राघवपाण्डवीय है। इस काव्य मे रामायण तथा महाभारत दोनो की कथा एक साथ वर्णित है।

कवि पार्श्व का पार्श्वनाथपुराण चम्पू काव्य है। इसमे १६ आश्वास हैं। इस पुराण मे २३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ के चरित्र का चित्रण किया गया है। कवि ने अपने इस पुराण की प्रशसा स्वय की है। पार्श्व ने अपने ग्रन्थ के आरभ मे सभी प्रसिद्ध कन्नड एव सस्कृत-प्राकृत जैन कवियो का स्मरण किया है।

कवि का वध ललित और मधुर है। पार्श्व सगीत तथा नृत्य के भी विशेषज्ञ थे। अपनी रचना मे इन्होने इन कलाओ का भी उपयोग किया है। पार्श्वनाथ पुराण के १२वें आश्वास के १९वें से ३९वें पद्य तक सगीत और नृत्य का वर्णन बहुत ही सुन्दर है। पार्श्व कन्नड एव सस्कृत दोनो भाषाओ के मर्मज्ञ कवि थे। इनकी रचना में सदर्भानुसार अलकार, नीति तथा लोकोक्तियो का सुदर ढंग से प्रयोग हुआ है। कथा भाग सरस, शैली प्रवाहमय और वर्णन सुन्दर है। कमठ का चरित्र-चित्रण भी चित्ताकर्षक है।

जन्न

यह यशोधरचरित तथा अनन्तनाथपुराण के रचयिता हैं। 'मोहानुभवमुकुर' (लगभग १४०० ई०) नामक ग्रथ से ज्ञात होता है कि इनका 'स्मरतत्र' नामक एक अन्य ग्रन्थ भी था। किंतु वह अभी तक उपलब्ध नही हुआ है। जन्न काश्यपगोत्रीय हैं। इनके पिता शकर और माता गगादेवी हैं। शकर होय्सल राजा नरसिंह (ई० सन् ११४१--११७३) का कटकोपाध्याय (सेना-शिक्षक) था। इन्हे 'सुमनोवाण' नामक उपाधि प्राप्त थी। कवि जन्न का जन्म आषाढ कृष्ण त्रयोदशी के शुभ दिन रेवती नक्षत्र मे शिवयोग मे हुआ था (अनन्तनाथ पुराण, आ० ४, पद्य १३६-१३७ तथा आ० १४, पद्य ७५)। इनकी धर्मपत्नी दण्डाधिपति रेचण की पुत्री लक्कुमादेवी थी। कानूर्गणीय माधवचन्द्र के शिष्य गण्डविमुक्त मुनि रामचन्द्रदेव इनके गुरु थे। जगदेकमल्ल (ई० सन् ११३८--११५०) के कटकोपाध्याय (सेना-शिक्षक) अभिनवशर्ववर्म नामक उपाधिधारी द्वितीय नागवर्म जन्न के उपाध्याय (शिक्षक) थे (अनंतनाथपुराण, आ० २, पद्य ३४)। 'सूक्तिसुधार्णव' के रचयिता मल्लिकार्जुन (लगभग ई० सन् १२४५) कवि के बहनोई थे। 'शब्दमणिदर्पण' के रचयिता केशिराज (लगभग ई० सन् १२६०) जन्न के भागिनेय थे। इस प्रकार कवि जन्न बडे भाग्यशाली थे, उनके सम्बन्ध उच्च घरानो से थे।

जन्न तर्क, व्याकरण, साहित्य, नाट्य आदि शास्त्रो के ही पारगामी नही थे (यशोधरचरित, आ० १, पद्य १८-१९) बल्कि वे दृढकाय तथा साहसी थे तथा शस्त्रविद्या मे भी पारगत थे। इस तरह शस्त्र-शास्त्र दोनो मे प्रवीण होने के कारण वे तत्कालीन शासक वीरनरसिंह के यहाँ मत्री तथा दण्डाधीश जैसे गरिमामय उभय पदो पर आसीन थे (अनतनाथपुराण, आश्वास १, पद्य २४)। वस्तुत' कवि के शस्त्र-शास्त्र सम्बन्धी अद्भुत पाण्डित्य ने ही गुणग्राही राजा

वीरनरसिंह को उनकी ओर आकृष्ट किया था। इसमे सदेह नहीं है कि कवि का प्रभाव पहले जनता में और बाद मे राजसभा मे पहुँचा होगा।

यद्यपि जन्न सभी कलाओ मे प्रवीण थे परन्तु उन्हे काव्यकला मे विशेष रुचि थी। बाल्यावस्था से ही सरस्वती उनपर मुग्ध हो गयी थी। इसका स्पष्ट प्रमाण कवि द्वारा रचित चेन्नरायपट्टण (शक संवत् १११२–ई० सन् ११९१–न० १७९) तथा तरीकेरे (शक सवत् १११९ ई०–सन् ११९७, न० ४५) के शिलालेख हैं। इस प्रकार बाल्यावस्था मे ही अकुरित कवि की कवित्वशक्ति उनके अविरत प्रयासो से यथाशीघ्र लता बन गई, जिसमे यशोधरचरित तथा अनतनाथपुराण जैसे दो मनोहर सुगधित पुष्प विकसित हुए और जिनकी गध से रसिक एव भावुक साहित्यिक आकर्षित हुए। केवल भावुक साहित्यिक ही नही, स्वय राजा वीरवल्लाल भी उपर्युक्त काव्यो की रसानुभूति से अपने को वचित नही रख सका। सहृदय गुणग्राही राजा वीरवल्लाल ने जन्न की कविता से मुग्ध होकर उन्हे कविचक्रवर्ती की उपाधि प्रदान की (अनतपुराण, आश्वास १, पद्य २५)।

कवि ने यशोधरचरित की रचना वीरवल्लाल (ई० सन् ११७३--१२२०) के शासनकाल मे शुक्ल सवत्सर अर्थात् ई० सन् १२०९ मे तथा अनतनाथपुराण की रचना वीरवल्लाल के पुत्र वीरनरसिंह (ई० सन् १२२०--१२३५) के राज्यकाल मे विकृत सवत्सर अर्थात् ई० सन् १२३० मे की थी (अनतनाथपुराण, आश्वास १४, पद्य ८४)। जन्न साहित्यरत्नाकर, कविभाललोचन, कविचक्रवर्ती, विनेयजनमुखतिलक, राजविद्वत्सभाकलहस, कविवृन्दारकवासव, कविकल्पलतामन्दार आदि उच्च उपाधियो से विभूषित हैं।

कवि जन्न को लौकिक विद्या मे जितनी रुचि थी, उतनी ही अध्यात्मविद्या मे भी थी। इसकी पूर्ति हेतु वह उस समय के प्रसिद्ध विद्वान् माघनन्द्र त्रैविद्य के शिष्य गण्डविमुक्त, मुनि रामचन्द्र के चरणो मे पहुँचे। वहाँ पर जैनधर्म के तत्त्वो का अच्छी तरह अध्ययन कर उन्होने अपने अगाध पाण्डित्य का सदुपयोग जैनधर्म के पुनरुद्धार के लिए किया। वस्तुत जन्न की धन-सम्पदा, बुद्धि-कौशल एव कवित्व-शक्ति जैन-धर्म के प्रचारार्थ ही समर्पित थी।

लोक मे सामान्यतया लक्ष्मी और सरस्वती मे परस्पर असहिष्णुता देखी जाती है, इसलिए विद्वान् प्राय निर्धन होते हैं। परन्तु कवि जन्न वैभव सपन्न थे। इन्होंने 'सौभाग्यसपन्न' आदि शब्दो का प्रयोग करके अपनी रचनाओ मे स्वय इस बात को व्यक्त किया है। जन्न बडे उदार थे तथा सदा गरीबो की

मदद करते रहते थे। कवि का कथन है कि "मैंने अपने हाथो को कभी दूसरो के सामने नही पसारा है बल्कि बराबर दूसरो को दिया है" (अनतनाथपुराण, आश्वास १४, पद्य ८०)। जन्न ने गण्डरादित्य के राज्य में अनंतनाथतीर्थंकर का भव्य मदिर और द्वारसमुद्र मे विजयपार्श्व जिनेश्वर के जिनालय का द्वार बनवाया था।

इसमे सन्देह नही है कि कवि जन्न का सारा जीवन साहित्य तथा धर्म-सेवा मे व्यतीत हुआ है। इनके यशोधरचरित और अनतनाथपुराण दोनो ही जैनधर्म के प्रचारार्थ रचे गये हैं। इस बात को कवि ने स्वय अपनी रचना मे स्पष्ट कहा है। जैन कवियो का यह आदर्श रहा है कि वे अपनी बहुमूल्य काव्य प्रतिभा को महापुरुषो के पवित्र जीवनचरित्रो की रचना के द्वारा सार्थक बनाते रहे हैं।

कवि जन्न ने अपने पूर्ववर्ती कवियो में गुणवर्म, पम्प, पोन्न, रन्न, नागचन्द्र आदि प्रसिद्ध सभी जैन कवियो का स्मरण किया है। दूसरी ओर परवर्ती अण्डय्य, कमलभव, मल्लिकार्जुन, कुमुदेन्दु, मगरस आदि मान्य कवियो ने जन्न की स्तुति की है। जन्न के यशोधरचरित में गद्य नहीं है, केवलवृत्त हैं। शेष सभी कन्द पद्य हैं। यह सुन्दर काव्य चार अवतारो मे विभक्त है। इसमें कुल ३११ कन्द पद्य हैं। प्रस्तुत काव्य मे कवि ने पच अणुव्रतो मे अन्यतम एवं प्रमुख अहिंसाणुव्रत की महिमा को बडे ही आकर्षक ढग से समझाया है। राजा मारिदत्त के द्वारा अपनी कुलदेवी को बलि देने हेतु लाये गये मनुष्य युगल के द्वारा कही गयी जन्मान्तर कथाओ को सुनकर राजा स्वय हिंसा को सर्वथा त्यागकर ससार से विरक्त हो जाता है। यही इस काव्य का कथासार है। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओ मे एतद्विषयक कई ग्रथ हैं, जैसे, यशस्तिलकचम्पू, यशोधरकाव्य, जसहरचरिउ आदि। इनमे यशस्तिलकचम्पू एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण महाकाव्य है। इसके रचयिता राजनीति शास्त्र के मर्मज्ञ आचार्य सोमदेवसूरि हैं।

कवि ने काव्यारंभ में कुन्दकुन्द, समतभद्र, पूज्यपाद आदि आचार्यों के स्मरण के साथ-साथ सल, विनयादित्य, यरेयंग आदि होय्सल वश की परम्परा का विस्तार से वर्णन किया है और अपने आश्रयदाता वीरबल्लाल की विशेष रूप से प्रशंसा की है। आर० नरसिंहाचार्य के शब्दो मे इसका बध ललित, मधुर, गंभीर और हृदयगम है। कवि मधुर के द्वारा जन्न को कर्णाटककविता का सीमापुरुष कहा जाना सर्वथा समुचित है। निर्गल रूप से प्रवाहित

होनेवाली इसकी कविता के प्रवाह को देखकर बडा आश्चर्य होता है। प्रो० डी० एल० नरसिंहाचार्य ने अपने एक लेख मे वादिराज के सस्कृत यशोधर काव्य से जन्न के इस यशोधरचरित की तुलना की है और अनेक दृष्टियो से यशोधरकाव्य की अपेक्षा यशोधरचरित को उत्तम सिद्ध किया है। कहने का तात्पर्य यह है कि महाकवि जन्न वस्तुत' कन्नड साहित्य के महान् कवियो मे से एक हैं।

कवि का दूसरा ग्रथ अनन्तनाथपुराण है। यह एक चम्पू काव्य है। इसमे १४वें तीर्थंकर अनन्तनाथ की पवित्र जीवनी चित्रित है। साथ-साथ इसमे इसी वश के वलदेव सुप्रभ, वासुदेव पुरुषोत्तम और प्रतिवासुदेव मधुकैटभ का चरित्र भी वर्णित है। अनन्तनाथपुराण १४ आश्वासो मे विभक्त है। इसमे कवि ने अलकारो को विशेष स्थान नही दिया है। यह पुराण दोरसमुद्र (हलेवीडु) के शान्तीश्वर जिनालय मे पूर्ण हुआ था। इसमे यशोधरचरित के भी अनेक पद्य उपलब्ध होते हैं। इससे स्पष्ट है कि यह ग्रंथ यशोधर चरित के वाद का है।

आचार्य गुणभद्ररचित उत्तरपुराण, चाउण्डराय रचित चाउण्डरायपुराण आदि प्राचीन कृतियो को आदर्श मानकर कवि ने नवीन सन्निवेशो की कल्पना की है। पप आदि पूर्व कवियो के मार्ग का अनुसरण करते हुए महाकवि जन्न ने इस सुरुचिपूण एव काव्यलक्षण से युक्त पुराण की रचना करके अपने कवित्व की प्रौढता को व्यक्त किया है। वस्तुत इसके पठन से जहाँ रसिको का मनोरजन होता है, वही भावुक भव्य जीवो की जिनेन्द्र भगवान् मे अनन्य एव अविचल भक्ति उत्पन्न होती है। इस ग्रन्थ मे महाकवि जन्न ने दैनदिन अनुभव की घटनाओ को चित्ताकर्षक शैली मे प्रस्तुत किया है। इस काव्य ने सभी को आकृष्ट कर दिया था। इस पुराण मे जैन सिद्धान्तो के मार्मिक उपदेश एव तपस्या के विशद् वर्णन के साथ ही इसमे तीर्थंकर अनतनाथ के पचकल्याणको का वर्णन है। इसमे उनकी वाललीला, यौवन-प्राप्ति पर माता-पिता के द्वारा कन्यान्वेषण एव विवाह का आयोजन, सासारिक सुख-भोग और उनके उद्दीपक वसन्त ऋतु, चन्द्रोदय आदि का सजीव प्रस्तुतीकरण है। वाद में ससार से विरक्ति, तपस्या, केवलज्ञान, निर्वाण प्राप्ति आदि का सुदर चित्रण है।

शृगार, वीर, करुण, और हास्यादि विविध रसो की सृष्टि करके जन्न ने प्रस्तुत पुराण को वहुत ही आकर्षक वनाया है। एक बार इसके आद्योपान्त

पठन से रसिक पाठको का हृदय अवश्य प्रफुल्लित हो उठेगा। खासकर साध्वी सुनदा तथा चडशासन के उपाख्यान महाकवि जन्न की अनुपम कवित्व शक्ति के परिचायक हैं। दुष्ट और क्रूर चडशासन के द्वारा पतिव्रता शिरोमणि सुनदा का कारागार मे रखा जाना, वहाँ पर उसे बुरी तरह सताया जाना, उसके पूज्यपति वसुषेण के मस्तक को सामने लाकर रखना, उसे देखकर सुनंदा का देहत्याग करना आदि दृश्य वस्तुत हृदय-विदारक हैं। इन वर्णनो मे करुण-रस की निर्मल गगा निर्बाध रूप से प्रवाहित हुई है।

जन्न ने ग्रथारंभ मे सभी प्रसिद्ध आचार्यों एव कवियो का स्मरण किया है और ग्रथान्त मे अपने आश्रयदाता राजा वीरनरसिंह को हृदय से आशी-र्वाद दिया है। जन्न के उपर्युक्त सक्षिप्त परिचय से विद्वान् पाठको को उस मेधावी महाकवि के अगाध पाण्डित्य, गहन लोकानुभव, व्यापक शास्त्राध्ययन, अनुपम वर्णनवैदुष्य का पता चल जाता है। वस्तुतः जन्न एक महाकवि हैं और उनकी काव्यप्रतिभा स्पृहणीय है। विद्वानो की दृष्टि से जन्न हितमित-भाषी और उचित पदप्रयोग मे सिद्धहस्त थे। अनावश्यक कठिन शब्दो का प्रयोग कवि ने कही भी नही किया है। समुचित सुदर शब्द जन्न के काव्य मे प्रयुक्त हैं। लालित्य, माधुर्यादि गुणो से परिपूर्ण जन्न का कथा-कौशल्य सर्वांग सुन्दर है।

गुणवर्म (द्वितीय)

यह पुष्पदतपुराण तथा चन्द्रनाथाष्टक के रचयिता हैं। इनका आश्रय-दाता राजा कार्तवीर्य का सामत शातिवर्म है। कार्तवीर्य के गुरु मुनिचन्द्र ही इनके भी गुरु हैं। गुणवर्म ने पूर्व कवियो की स्तुति मे महाकवि जन्न (ई० सन् १२३०) की स्तुति की है। अतः यह निर्विवाद सिद्ध है कि कवि गुणवर्म जन्न के बाद हुए। मल्लिकार्जुन (ई० सन् १२४५) ने इनके पुष्पदत पुराण के कतिपय पद्यो का अनुकरण किया है। इसलिए यह भी सिद्ध है कि गुणवर्म मल्लिकार्जुन के पूर्व के हैं। इन आधारो पर आर० नरसिंहाचार्य की राय है कि कवि गुणवर्म लगभग १२३५ ई० मे जीवित रहे होंगे।

नरसिंहाचार्य जी के मतानुसार ई० सन् १२२९ मे उत्कीर्ण सौंदत्ति के शिलालेख मे उल्लिखित कार्तवीर्य मुनिचन्द्र और शातिनाथवर्म ही, निस्स-न्देह गुणवर्म के द्वारा स्मृत कार्तवीर्य, मुनिचन्द्र तथा शातिवर्म हैं। शिलालेख में शातिनाथ को मुनिचन्द्र का आत्मज बतलाया गया है। इसके अतिरिक्त शिलालेख मे इन्हें 'इष्टशिष्ट चिन्तामणि' भी कहा गया है। पुष्पदंतपुराण में

कवि गुणवर्म ने भी 'इष्टशिष्टकल्पकुज' के रूप मे शातिवर्म की स्तुति की है। कार्तवीर्य ई० सन् १२०२ से १२२० तक शासन करता रहा था। इसकी सभा मे ही शातिवर्म ने कवि गुणवर्म को पुष्पदतपुराण की रचना के लिए प्रेरणा दी थी। यह वात पुष्पदतपुराण से भी सिद्ध होती है।

कार्तवीर्य कुतलदेशस्थ कू डि मे राज्य करता रहा। अत. कवि का जन्म-स्थल भी कू डि ही रहा होगा। ऊपर कहा जा चुका है कि गुणवर्म के पूज्य गुरु मुनिचन्द्रदेव थे। कवि ने स्वय अपनी रचना मे भी स्वीकार किया है कि मैं इनकी कृपा से ही कविता बनाने मे समर्थ हुआ हूँ। गुणवर्म को कवि तिलक, सरस्वतीकर्णपूर, सहजकविसरोवरहस, प्रभुगुणाब्जिनीकलहस, गुणरत्नभूषण, भव्यरत्नाकर, मानमेरु तथा काव्यसत्कलार्णवमृगलाछन आदि अनेक उपाधियाँ प्राप्त थी।

कवि गुणवर्म ने पूर्व कवियो मे गुणवर्म (प्रथम), पप, पोन्न, रन्न, अग्गल, नागवर्म, नेमिचन्द्र, जन्न तथा नागचन्द्र का सादर स्मरण किया है। विविधकलाभिज्ञ, कविताचतुर, सुविवेकनिधान, नृपकृतिमहित आदि विशेषणो के द्वारा इन्होने स्वय अपने गुणो का बखान किया है। आत्मप्रशसा की इन वातो को एक ओर रखने पर भी इतना तो अवश्य स्वीकार करना पडेगा कि गुणवर्म एक प्रौढ कवि थे और इनकी रचनायें पठनीय हैं।

पुष्पदतपुराण चम्पूकाव्य है। इसमे १४ आश्वास हैं। इसकी कुल पद्य सख्या १३६५ है। इसमे ९वें तीर्थंकर पुष्पदत की जीवनी वर्णित है। ग्रथ का बध ललित एव सुदर है। इसमे जहा-तहा कर्णाटक मे प्रचलित लोकोक्तियाँ भी सम्मिलित कर दी गयी हैं। इनकी रचनाओ मे काव्य के रसास्वादन के बाधक और पप आदि महाकवियो से परित्यक्त वृत्यनुप्रास, यमकादि शब्दालकार भी पाये जाते हैं, जिन्हे अलकारशास्त्रियो ने दूषित माना है। कवि ने इस वात का पूर्णरूप से ध्यान रखा है कि ध्वनि काव्य का प्राण होती है। शास्त्रीय तथा सस्कृत साहित्य मे प्रचुर परिमाण मे पाये जानेवाले 'काकतालीय' आदि अनेक न्याय भी पुष्पदतपुराण मे पाये जाते हैं।

इस पुराण का कथा भाग अन्य पुराणो के कथा भाग की तरह अनेक जन्मान्तर की कथाओ के कारण पाठक मे अरुचि उत्पन्न नही करता है। इसका कथा भाग बहुत ही सक्षिप्त है। ऐसी सक्षिप्त कथा को बढाकर १४ आश्वासों में परिवर्तित कर देना भी एक असाधारण कार्य है, इससे कवि की

कवित्वशक्ति का पता लगता है। इस विस्तार मे कोई भी भाग अप्रकृत अथवा असवद्ध नही मालूम होता है।

जैन पुराणो का प्रधान रस शातरस है। शृगारादि अन्य रस इस प्रधान रस के सहायक मात्र हैं। कवि का कहना है कि जिस तरह तिक्त औषधियो मे प्रवृत्ति कराने के लिए अबोध बालको को शर्करा आदि मधुर वस्तु दी जाती है, उसी तरह मोक्ष के प्रति अरुचि रखनेवाले व्यक्तियो को उस ओर आकर्षित करने के लिए ही शृगारादि रसो का प्रयोग जैन पुराणो में किया जाता है। ऐसी दशा मे शातरसप्रधान काव्यो मे शृगारादि रसो को अधिक महत्त्व न देकर उसके प्रधान रस की यथावत् रक्षा करनेवाले कवि का प्रतिभाचातुर्य वस्तुत प्रशसनीय है।

जैन कवियो मे पुराण के अगो के प्रश्न पर मतभेद हैं, कुछ लोग पुराण के आठ अग मानते हैं तो कुछ पाँच अग मानते हैं। पुष्पदतपुराण में आठो अङ्ग लिये गये हैं। विद्वानो का कहना है कि गुणवर्म का वध प्रौढ़ एव अनुप्रासयुक्त है। ग्रथारभ मे कवि ने तीर्थङ्कर पुष्पदन्त, सिद्ध, सरस्वती, यक्ष-यक्षी, केवली, श्रुतकेवली, दशपूर्वधारी, एकादशागधारी, आचारागधारी और कुदकुंद आदि सभी प्रसिद्ध आचार्यों की सादर स्तुति की है।

गुणवर्म के चन्द्रनाथाष्टक में सिर्फ ८ पद्य हैं। ये पद्य महास्रग्धरा वृत्त मे रचे गये हैं। प्रत्येक पद्य 'चन्द्रनाथ' शब्द से प्रारम्भ होता है। यह अष्टक कोल्हापुर के त्रिभुवनतिलक जिनालय के चन्द्रनाथप्रभु की स्तुतिरूप मे रचित है। इसमे गम्भीर शैली में तीर्थङ्कर चन्द्रनाथ का गुणगान किया गया है। गुणवर्म की ये दोनो कृतियाँ मद्रास विश्वविद्यालय से प्रकाशित हो चुकी हैं।

कमलभव

इन्होने शान्तीश्वरपुराण लिखा है। इनके गुरु देशीयगण, पुस्तकगच्छ और कुन्दकुन्दान्वय के यति माघनन्दी है। कमलभव ने पूर्वकवियो मे जन्न का स्मरण किया है। इसलिए इतना तो स्पष्ट है कि ये जन्न के बाद हुए हैं। मल्लिकार्जुन ने अपने 'सूक्तिसुधार्णव' मे कमलभव के ग्रन्थ से अनेक पद्यो को उद्धृत किया है। अत कवि कमलभव का मल्लिकार्जुन के भी पहले होना सुनिश्चित है। इस आधार पर इनका समय लगभग १२३५ ई० निर्धारित किया गया है।

'कुसुमावलि' के रचयिता देव कवि कमलभव की ग्रथ-रचना के प्रेरक रहे होगे। यही कारण है कि कुसुमावलि के कतिपय पद्य कमलभव के ग्रथ

मे उपलब्ध होते हैं। विदित होता है कि कमलभव को कविकजगर्भ और सूक्तिसदर्भगर्भ की उपाधियाँ प्राप्त थी। कमलभव ने पूर्वकवियो मे पप, पोन्न, नागचन्द्र, रत्न, बन्धुवर्म तथा नेमिचन्द्र आदि का स्मरण किया है। इन्होने अपनी रचना मे अपने गुण एव कविता-चातुर्य की प्रशसा भी स्वय की है।

कमलभव का शान्तीश्वरपुराण १६ आश्वासो मे विभक्त है। ग्रन्थ के प्रारम्भ मे कवि ने शान्तीश्वर एव सिद्धो की स्तुति के अनन्तर प्राय सभी प्रसिद्ध आचार्यों एव कन्नड कवियो की स्तुति की है। आर० नरसिंहाचार्य के मत मे यह एक लालित्यपूर्ण काव्य रचना है। इसमे कवि की काव्य धारा निर्बाध रूप से प्रवाहित हुई है। इसमे सन्देह नही है कि कमलभव एक प्रतिभाशाली कवि हैं। इनका शान्तीश्वरपुराण मैसूर सरकार की ओर से प्रकाशित हो चुका है। सभव है कि कमलभव के द्वारा अन्य कोई ग्रन्थ भी रचा गया हो। परन्तु अभी तक केवल शान्तीश्वरपुराण ही उपलब्ध हो सका है।

महाबल

इन्होंने नेमिनाथपुराण की रचना की है। ये भारद्वाज गोत्र के हैं। इनके पिता रायिदेव, माता राजियक्क, गुरु मेघचन्द्र थे। प्रत्येक आश्वास के अन्त मे गद्य मे कवि ने 'माघचन्द्रत्रैविद्यचक्रवर्तिश्रीपादप्रसादासाधित-सकलकलाकलाप' यो त्रैविद्यचक्रवर्ती माधवचन्द्र को सादर स्मरण किया है। सम्भवत माधवचन्द्र महाबल के विद्यागुरु थे। नेमिनाथपुराण का रचना काल शक सवत् ११७६ (ई० सन् १२५४) है, इसका उल्लेख कवि ने स्वय किया है। केतयनायक अथवा क्षेमकर ने महाबल के द्वारा नेमिनाथ-पुराण की रचना कराई थी।

केतयनायक स्वय कवि थे। यह बात उपर्युक्त पुराण से ही विदित होती है। केतय की पत्नी श्रीपति की पुत्री मरुदेवी थी। मरुदेवी की एक पुत्री थी, जिसका विवाह कलिदेव के साथ हुआ था। केतयनायक ने कोटिबागे जिनालय मे व्रत लिया था। कवि महाबल श्रीपति के पुत्र लक्ष्म का गुरु था। महावल ने अपने को 'सचिव' लिखा है, सम्भवतः ये केतयनायक के 'सचिव' रहे होंगे। कवि ने लिखा है कि उसने अपने ग्रन्थ नेमिनाथपुराण को श्रुताचार्य आदि की उपस्थिति मे सभा मे सुनाकर अपने शिष्य (पूर्वोक्त) लक्ष्म से लिखवाया है।

महाबल को 'सहजकविमनोगेहमाणिक्यदीप' और 'विश्वविद्याविरिंचि' नामक उपाधियाँ प्राप्त थी। इन्होने अपने पूर्ववर्ती कवियो का स्मरणनही किया

है। महाबल ने अपने कविता-चातुर्य की स्वयं प्रशंसा की है। इनका नेमिनाथ-पुराण एक चम्पूग्रथ है। यह १६ आश्वासो मे पूर्ण हुआ है। इसमे हरिवश तथा कुरुवश दोनो की कथा वर्णित है। ग्रन्थारम्भ मे सभी कवियो की तरह सिद्ध, सरस्वती आदि की स्तुति के उपरान्त आचार्य एव कवियो की स्तुति की गई है। नेमिनाथपुराण का बन्ध प्रौढ है। यह पुराण अभी अप्रकाशित है।

आंडय्य

आडय्य के काव्य का नाम कब्बिगरकाव अर्थात् मदनविजय है। कन्नड भाषाभाषियो के निवेदन पर इन्होंने इस काव्य की रचना की थी। वस्तुत. यह रचना कन्नड भाषाभाषियो के लिए कवि की एक अपूर्व देन है। मदन विजय काव्य मे वैदिक पुराणोक्त शिव और काम का युद्ध वर्णित है। किसी भी जैन मूल ग्रन्थ मे अनुपलब्ध एक नवीन कथा को कवि ने स्वप्रतिभा-चातुर्य के द्वारा सुन्दर ढंग से निरूपित किया है। अपनी पूर्व स्थिति के सम्बन्ध मे अनजान बना हुआ काम रति के द्वारा कामविजय सम्बन्धी अपनी ही कथा को सुनकर शाप से मुक्त हो जाता है। वस्तुत. यह कवि की एक नवीन उद्भावना है। आडय्य कन्नड साहित्य को एक नवीन कथावस्तु प्रदान करने के लिए ही नही, अपितु अपनी कथन-शैली और भाषा-वैशिष्ट के लिए भी चिरस्मरणीय हैं। पूर्व के कवियो की कृतियो मे सस्कृत समासपदो की क्लिष्टता को देखकर कवि का मन दु खी हुआ होगा और इसीलिए उसने देश्य एवं तद्भव शब्दो को अपनाने का प्रयास किया होगा। आडय्य की भाषा-शैली ललित एवं मधुर तथा वर्णन चित्ताकर्षक हैं। इसके काव्य मे प्रयुक्त 'मुक्तपदग्रास' नामक शब्दालकार स्वाभाविक तथा ललित है।

कवि ने अपने काव्य मे जैन धर्म की श्रेष्ठता को बहुत ही सुन्दर ढग से चित्रित किया है। एतदर्थ केवल एक उदाहरण पर्याप्त होगा। एक ही बाण से शिव को अर्धनारीश्वर बनानेवाला महाशूर मन्मथ (कामदेव) एक श्रमण (मुनि) को देखकर थर-थर काँपने लगा और उस श्रमण की महान् तपस्या से प्रभावित होकर वह भक्ति से विनम्र बन गया। जब एक श्रमण में ही इतनी सामर्थ्य हो तो फिर तीर्थङ्कर की महिमा का क्या कहना ? जिन और शिव मे क्या समानता ? जैन धर्म की महिमा को दिखाने के लिए कवि आडय्य का यह कथा-चातुर्य प्रशसनीय है। वस्तुत आडय्य के इस काव्य मे लालित्य एव माधुर्य दोनो ही उपस्थित हैं।

मल्लिकार्जुन एव केशिराज

१३वी शताब्दी के मध्य भाग मे हुए इन दोनो पिता-पुत्र का कन्नड साहित्य के इतिहास मे एक विशिष्ट स्थान है। ये दोनो ही कवि थे। परन्तु खेद की बात है कि अभी तक इनका कोई भी स्वरचित काव्य ग्रन्थ उपलब्ध नही हुआ है। मल्लिकार्जुन मल्ल और मल्लप्प नाम से भी प्रसिद्ध हैं। मल्लिकार्जुन ने अपने से पूर्व के कन्नड साहित्य से 'सूक्तिसुधार्णव' नामक एक पद्य सकलन अवश्य तैयार किया है। इसमे १९ आश्वास है। इस सकलन ग्रथ के पूर्व-पीठिका नामक प्रथम आश्वास मे इनके स्वरचित अनेक पद्य उपलब्ध होते हैं, मात्र इतना ही नही, इस आश्वास मे इनके द्वारा रचित बहुत से ऐसे पद्य भी मिलते हैं जो अभिलेखो मे उत्कीर्ण हैं।

केशिराज

इन्होने अपने ग्रन्थ शब्दमणिदर्पण मे चोलपालचरित, सुभद्राहरण, प्रबोध चन्द्र और किरात नामक अपनी स्वरचित कृतियो का उल्लेख किया है। परतु अभी तक इनमे से एक भी ग्रन्थ प्राप्त नही हो सका है। विद्वानो की राय से प्रबोधचन्द्र नाटक ग्रन्थ होगा। यदि यह एक नाटक ग्रन्थ हो तो कन्नड साहित्य मे इसका बडा महत्त्व होगा, क्योंकि प्राचीन कन्नड साहित्य मे नाटक ग्रथो का सर्वथा अभाव है। इसमे सन्देह नही है कि केशिराज एक श्रेष्ठ कवि हैं।

मल्लिकार्जुन के सूक्तिसुधार्णव की पूर्वपीठिका नामक प्रथम आश्वास को छोडकर शेष १८ आश्वासो मे १८ प्रकार के वर्णन मिलते हैं। इन वर्णनो के पद्य बहुत ही सरस हैं। इस सकलन मे कद और वृत्त ही लिये गये हैं। सूक्तिसुधार्णव कन्नड साहित्य के इतिहास की दृष्टि से बहुत ही मूल्यवान् है। अभी तक अनुपलब्ध एव अप्राप्य अनेक काव्यरचनाओ के कतिपय अश इस सकलन मे मिलते हैं। कवियो के कालनिर्णय के लिए भी यह ग्रथ आधारभूत है। इस सकलन मे उद्धृत पद्यकाव्यो के रचयिता ई० सन् १२५० के पूर्व के सिद्ध होते हैं। जबकि इसमे अनुद्धृत सभी कवि परवर्ती सिद्ध होते हैं।

सूक्तिसुधार्णव के सग्रहकार्य मे पिता के साथ केशिराज का भी योगदान रहा होगा। पूर्ववर्ती सभी काव्य ग्रथो के अवलोकन से केशिराज को अपने व्याकरण ग्रन्थ शब्दमणिदर्पण की रचना मे पर्याप्त सहायता मिली होगी। केशिराज ने इन्ही ग्रन्थो के आधार पर व्याकरण सम्बन्धी नियमो का सग्रह किया होगा। शब्दमणिदर्पण एक सुन्दर व्याकरण ग्रथ है। इसके सूत्र कद

पद्यो मे हैं तथा वृत्ति गद्य मे है और उदाहरण पूर्वकवियो के काव्यो से लिये गये हैं। व्याकरण के नियमो को समझाने के लिए कंद पद्य ही सरल होता है। इसके सभी उदाहरण बहुत सरस होने के कारण यह व्याकरण ग्रन्थ भी काव्य की अनुभूति देता है। कवि की प्रामाणिकता प्रशसनीय है, उसके सभी कथ्य सप्रमाण हैं।

पुरानी भाषा में व्यवहृत अशुद्ध प्रयोगो को दूर कर, भाषा को परिशुद्ध बनाना ही केशिराज का प्रधान लक्ष्य रहा। कन्नड धातुपाठ के निर्माण का श्रेय केशिराज को ही है। इनके पिता मल्लिकार्जुन स्वय विद्वान् और कवि थे। इनकी माता सुमनोबाण की सुपुत्री थी तथा मातुल प्रसिद्ध महाकवि जन्न थे। सुमनोबाण भी स्वय कवि थी। अतः बाल्यकाल से ही उसे साहित्यिक परिवेश उपलब्ध रहा।

कवि मल्ल ने अपने 'मन्मथविजय' मे इसको लोक का एकमात्र शब्दज्ञ कहा है। उसका यह कथन कम से कम कन्नड भाषा की दृष्टि से तो सर्वथा सत्य है। निर्दोष पाडित्य को प्राप्त करने के लिए 'शब्दमणिदर्पण' का अभ्यास आवश्यक ही नही, अनिवार्य है।

नागराज

इनका समय लगभग ई० सन् १३३१ है। कवि के पिता विवेक विठ्ठलदेव और माता भागीरथी थी। नागराज का सहोदर तिप्परस एवं गुरु अनन्तवीर्य केवली थे। भारतीभालनेत्र और सरस्वतीमुखतिलक इनकी उपाधियाँ थी। इनकी रचना 'पुण्याश्रवकथा' है। कवि का कहना है कि पूज्य गुरु की आज्ञा से सगर के निवासियो के लिए मैंने इस पुण्याश्रवकथा की रचना की है। इस रचना में देवपूजा, गुरूपास्ति, स्वाध्याय, सयम, दान और तप इन सबका वर्णन करके इनके आचरण के द्वारा स्वर्गापवर्ग को प्राप्त करनेवाले पुराणपुरुषो की कथाएँ वर्णित हैं।

यद्यपि नागराज ने नयसेन की तरह परधर्म का सीधा उपहास नही किया है, फिर भी उन्होंने जैन धर्म की श्रेष्ठता को स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया है। वड्डाराधना की कतिपय कथाएँ इनके पुण्याश्रव मे भी मिलती हैं। नागराज कथानिरूपण मे कुशल हैं। काव्य देशीय शैली मे लिखे गये हैं जो सरल एव ललित हैं। इसके साथ ही साथ वर्णन मे स्वाभाविकता भी है। 'पुण्याश्रवकथा' सामान्य जनता के लिए उपयोगी कथाग्रथ है।

बाहुबलि और मधुर

१४वी शताब्दी के पुराणरचयिताओ मे बाहुबलि और मधुर को भी सम्मिलित किया जा सकता है। बाहुबलि का समय लगभग ई० सन् १३५२ और मधुर का समय ई० सन् १३८५ है। दोनो के काव्य की विषयवस्तु एक ही है और वह है १५वें तीर्थंकर धर्मनाथ का चरित्र। 'उभयभाषाकवि-चक्रवर्ती' उपाधिधारी बाहुबलि का ग्रथ धर्मनाथपुराण एक प्रौढ ग्रन्थ है। इसमे १६ आश्वास हैं। मधुर के ग्रथ मे सप्रति केवल चार ही आश्वास उपलब्ध हैं। मधुर ने अपनी बडी प्रशसा की है। सम्भवत यह विजयनगर के राजा हरिहर के आस्थान मे कवि थे। इनके वर्णन में स्वाभाविकता है।

अभिनव विद्यानन्द और भट्टारक अकलक ने अपनी अपनी कृतियो में मधुर के पद्यो को लिया है। मधुर की एक गोम्मटस्तुति भी है। जैन चम्पू कवियो मे मधुर अन्तिम कवि हैं। बाहुबलि और मधुर दोनो जैन परम्परा के कवि हैं। इनके काव्यो मे भी जैन पुराणों की सामान्य विशेषताएं उपलब्ध होती हैं।

मगराज अथवा मगरस

चौदहवीं शताब्दी के चम्पू रचयिताओ मे 'खगेन्द्रमणिदर्पण' नामक वैद्यक ग्रथ के रचयिता मगराज (ई० सन् १३६०) एक विशिष्ट कवि हैं। इन्होंने अपने को होय्सल देशान्तर्गत मुगुलिपुर का अधिप एव पूज्यपाद का शिष्य बतलाया है। इनकी पत्नी का नाम कामलता था और इनके तीन सतान थी। ये सब बातें इनकी कृतियो से ज्ञात होती हैं। कवि ने विजयनगर के राजा हरिहर की प्रशंसा की है। अत मगराज उसका समकालीन था। इसे 'सु-ललितकविपिकवसत', 'विभुवशललाम' आदि कई उपाधियाँ प्राप्त थी। मगराज का कहना है कि जनता के निवेदन पर मैंने सर्वजनोपकारी इस वैद्यक ग्रन्थ की रचना की है।

इसमें केवल औषधिया ही नही हैं, अपितु मत्र-यत्र भी हैं। कवि का मत है कि 'औषधियों से आरोग्य, आरोग्य से देह, देह से ज्ञान, ज्ञान से मोक्ष प्राप्त होता है। इसीलिए मैं औषधशास्त्र को बतला रहा हूँ।' मगराज ने स्थावर और जगम दोनो प्रकार के विष को औषध बतलाया है। खगेन्द्रमणिदर्पण एक शास्त्रीय ग्रंथ है फिर भी इसमे काव्य के गुण उपस्थित हैं। इसकी रचना ललित और शैली भी सुन्दर है।

भास्कर

कवि भास्कर १५वी शताब्दी के पूर्वार्ध मे हुए हैं। इन्होने भामिनी षट्पदि मे 'जीवन्धरचरिते' लिखा है। इस काव्य ग्रन्थ के आधार पर वे बसवाक नामक जैन ब्राह्मण के पुत्र मालूम होते हैं। भास्कर ने उक्त काव्य को पेनगोंडे के शान्तीश्वर जिनालय मे शालिवाहन शक सवत् १३४५ (ई० सन् १४२३) मे रचा था। काव्य का कथाभाग मनोहर है। सन्निवेश रचना मे कवि ने अपने कौशल को सुन्दर ढग से अभिव्यक्त किया है। भास्कर की शैली सरल, ललित एव नादमय है। कवि का कल्पनाचातुर्य हृदयग्राही है। महाकवि वादीभसिंह सूरि के क्षत्रचूडामणि काव्य का ही यह कन्नड रूपान्तर है। यह काव्य प्रकाशित हो गया है।

कल्याणकीर्ति

यह १५वी शताब्दी के मध्य भाग मे हुए मालूम होते हैं क्योकि इन्होंने अपने 'ज्ञानचन्द्राभ्युदय' को ई० सन् १४३९ मे रचा था। कवि कल्याणकीर्ति ने ज्ञानचन्द्राभ्युदय, कामनकथे, अनुप्रेक्षे, जिनस्तुति और तत्त्वभेदाष्टक इन ग्रंथों की रचना की है। 'ज्ञानचन्द्राभ्युदय' नामक इस कथा ग्रन्थ में यह बताया गया है कि ज्ञानचन्द्र राजा ने तपस्या द्वारा किस प्रकार अपना आध्यात्मिक विकास किया। लगभग ९०० पद्यो का यह काव्य वार्धिक भामिनि और परिवार्धिनि षट्पदि नामक छन्दो मे है।

दूसरी रचना जैनधर्म से सम्बन्धित कामनकथे है। यह सागत्य छन्द में है। कवि ने इसे तुलु देश के शासक भैरवसुत पाण्डयराय की प्रेरणा से रचा था। इसमे लगभग ३३० पद्य हैं। इसकी शैली सरस है। कल्याणकीर्ति के शेष तीन ग्रन्थ भी जैनधर्म से सम्बन्धित हैं। कवि का एक अन्य काव्य सिद्धराशि है, पर वह अभी तक उपलब्ध नही है। ज्ञानचन्द्राभ्युदय को छोड कर इनके शेष ग्रथ अप्रकाशित हैं।

रत्नाकर वर्णी

रत्नाकर वर्णी के रत्नाकरसिद्ध, रत्नाकरअण्ण आदि कई नाम थे, किंतु कवि को रत्नाकरसिद्ध नाम ही विशेष प्रिय था। रत्नाकर ने अपने को कर्नाटकवासी, क्षत्रियवशी एव श्री मन्दरस्वामी का पुत्र बतलाया है तथा चारुकीर्ति को दीक्षागुरु और हसनाथ को मोक्षगुरु कहा है। रत्नाकर ने १०

हजार पद्य परिमित अपने 'भरतेशवैभव' नामक महाकाव्य को केवल ९ माह मे पूर्ण किया था। यद्यपि यह बात थोडी अतिशयोक्तिपूर्ण मालूम होती है। परन्तु महाकवि रत्नाकर के लिए यह असभव नही है।

देवचद्र के कथनानुसार रत्नाकर ने भरतेशवैभव के अतिरिक्त अपराजितेश्वरशतक, त्रिलोकशतक एव रत्नाकराधीश्वरशतक नामक शतकत्रय की तथा दो हजार अध्यात्मगीतो की रचना की है। कवि ने त्रिलोकशतक मे अपना जन्मस्थल मूडबिद्री बताया है। इस शतक का रचनाकाल ई० सन् १४५७ है। सम्भवत यह शतक कवि की प्रथम कृति है। इस प्रकार रत्नाकर ने १५वी शताब्दी के उत्तरार्ध मे ही अपनी कृतियो की रचना की है।

रत्नाकर के प्रत्येक शतक मे १२८ पद्य हैं। इन शतको में लोकस्वरूप को बतलानेवाला त्रिलोकशतक कद पद्य मे है। शेष दो शतक वृत्त मे निरूपित हैं। इनमे रत्नाकरशतक कवि की प्रत्युत्पन्नमति को प्रतिबिम्बित करनेवाला एक सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है। शेष शतको की तरह नीतिनिरूपण करना ही इसका लक्ष्य है। फिर भी इसमे ओज तथा तेज है। रत्नाकर एक स्वतन्त्रचेता कवि हैं। उनकी वाणी सटीक एव मर्मस्पर्शी है यद्यपि कर्म प्रतिपादन एव तत्त्वजिज्ञासा के सन्दर्भ में उनका दृष्टिकोण उदार है।

जीवन की क्षणभंगुरता को स्वीकार करते हुए भी रत्नाकर भोग से विमुख होने की बात नही कहते, बल्कि वह कहते हैं कि भोग को भोगते हुए भी शाश्वत सुख प्राप्त किया जा सकता है। यही कवि के भरतेशवैभव महाकाव्य का सार है।

भरतेशवैभव भरतचक्रवर्ती के चरित्र से सम्बन्धित एक महाकाव्य है। कथा बहुत पुरानी है। भरत प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र, सोलहवें मनु, प्रथम चक्री और चरमशरीरी हैं। अन्य सभी शलाकापुरुषो के जीवनचरित्र की तरह भरत के जीवनचरित्र का आधार भी आचार्य जिनसेन का आदिपुराण ही है। रत्नाकर ने जिनसेन द्वारा वर्णित भरत की कथा के मूलरूप को स्वीकार करते हुए भी उसके विवरण मे पर्याप्त परिवर्तन किया है। प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव की कथा के एक अग के रूप मे वर्णित इस कथा के आधार पर एक स्वतन्त्र कृति की रचना करना रत्नाकर की विशेषता है। इससे पहले किसी भी कन्नड कवि ने ऐसी रचना नही की थी। रत्नाकर ने जो कुछ कथावस्तु उपलब्ध थी उसे अपनी नवीन कल्पनाओ से सँजोया है तथा अपने कथानायक के चरित्र को नवीन ऊँचाइयों तक पहुँचाया है। अपने

इस प्रयत्न मे वह अवश्य सफल हुआ है। इस महाकवि ने तीर्थंकरो के पच कल्याणको की ही तरह भोगविजय, दिग्विजय, योगविजय, अर्ककीर्तिविजय और मोक्षविजय नाम की पाँच सधियो मे भरत की कथा का विस्तार किया है।

भरतेशवैभव के भोगविजय कथा भाग मे भरत के द्वारा अनुभूत लौकिक सुख भोगो का एव उसके ऐश्वर्य और समृद्धि का आकर्षक चित्र प्रस्तुत किया गया है जो हमे सहसा तीर्थंकर के गर्भावतरण-कल्याणक का स्मरण दिलाता है। वस्तुत भोगसधि श्रृगाररस का एक महासागर है। भरत चक्रवर्ती के जीवन का श्रृगारिक चित्रण आचार्य जिनसेन के पूर्वपुराण मे भी मिलता है। वास्तव में रत्नाकर ने भरत को एक अत्यत वैभवशाली एव सुखी व्यक्ति के रूप में चित्रित किया है। रत्नाकर ने 'भोग ' स सन्धि

धार पचाणुव्रतो का पालन करता है। भरत धर्म की मर्यादा के भीतर रहकर सासारिक सुख-भोग करनेवाला एक राजर्षि है।

वस्तुत भोग और त्याग मे अविरोध प्रदर्शित कर, भोग और योग के मध्य समन्वय करना ही महाकवि रत्नाकर के काव्य का एकमात्र लक्ष्य है। कवि कुवेंदु के शब्दो मे भरतेशवैभव मे त्याग और भोग के समन्वयरूपी योग-दर्शन को रत्नाकर ने सुन्दर ढग से प्रतिपादित किया है। उसने इस आदर्श को सिर्फ भरत के जीवन मे ही नहीं अपितु समूचे काव्य में कुशलतापूर्वक व्यक्त किया है। इस प्रकार की काव्यसृष्टि ससार के किसी भी साहित्य के लिए गौरव की वस्तु है। इस दृष्टि से भरतेशवैभव एक महान् कृति है।

रत्नाकर का काव्य चर्वितचर्वण या पिष्टपेषण नहीं है। वह साम्प्रदायिकता से भी बहुत दूर है। सामान्य जनता उसके काव्य से लाभ उठावे, यही कवि का प्रमुख लक्ष्य था। रत्नाकर की शैली सरस और सरल है। कवि के वर्णन मे स्वाभाविकता है। कवि ने जो कुछ लिखा है वह आत्मानुभव के आधार पर लिखा है। रत्नाकर कन्नड कवि रूप माला की एक देदीप्यमान मणि है। इनके काव्यो के कई संस्करण निकल चुके हैं।

विजयण्ण

विजयण्ण मूडबिद्री के निवासी थे। इन्होने द्वादशानुप्रेक्षा की रचना की है। यह कृति सागत्य छन्द मे है, बीच-बीच मे कही कद वृत्त भी हैं। ग्रथ मे जैन धर्म मे प्रतिपादित बारह भावनाओ का वर्णन है। साहित्य की दृष्टि से यह रचना बहुत महत्त्वपूर्ण नही है। कवि का निरूपण सरल, सुगम एव हृदयग्राही है। विजयण्ण का समय लगभग ई० सन् १४५० है। कवि का आश्रयदाता देवकवि है। उसी की प्रेरणा से प्रस्तुत ग्रथ रचा गया है। द्वादशानुप्रेक्षा को कन्नड में लाने का श्रेय विजयण्ण को ही है। यह ग्रथ पठनीय है। यह प्रकाशित भी हो गया है।

शिशुमायण

होय्सल देशातर्गत कावेरी नदी के तट पर अवस्थित नयनापुर शिशुमायण का जन्मस्थल था। कवि के पिता बोम्मिसेट्टि और माता नेमाबिका थीं। कवि के श्रद्धेय गुरु काणूर्गण के भानुमुनि थे। बेलुकेरे नगर के स्वामी गोम्मटदेव की प्रेरणा से कवि ने 'अजनाचरिते' की रचना की थी। त्रिपुरदहन नामक इनका एक अन्य ग्रन्थ भी है। शिशुमायण का समय ई० सन् १४७२ है। कवि के दोनो काव्य सागत्य छन्द मे निरूपित हैं। दोनो सरल

तथा प्रवाहपूर्ण है। सागत्य काव्यो की अभिवृद्धि मे शिशुमायण का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

शिशुमायण का त्रिपुरदहन २८२ सागत्य पद्यों की एक लघुकाय कृति है। यह संस्कृत प्रबोधचन्द्रोदय नाटक की तरह एक लक्ष्य काव्य है। कवि ने शिवपुराण की प्रसिद्ध त्रिपुरदहन की कथा मे परिवर्तन कर उसमे जिनेश्वर देव को जन्म-जरा-मरणरूपी त्रिपुरो का सहारकर्ता बतलाया है। तदनुकूल कवि ने मोहासुर को त्रिपुर का राजा; माया को उसकी रानी, मनुष्य, देव, तिर्यंच और नरक गतियो को चार पुत्र, क्रोध, लोभादि को मत्री तथा नाना विध कर्मों को उसका परिवार निरूपित किया है। शिवपुराण की सभी घटनाओ को यहाँ पर साकेतिक रूप दिया गया है। जिनेश्वरदेव के ललाट पर केवलज्ञानरूपी तीसरा नेत्र प्रकट होता है, जिसके द्वारा त्रिपुर (मोहासुर) सपरिवार पराजित कर दिया जाता है। परम दयालु जिनेश्वरदेवने मोहासुर को मारा नही, बल्कि हाथ-पैर बांधकर उसे अपने चरणो मे झुकाया और स्वतन्त्र छोड दिया। इस प्रकार कवि ने इस काव्य मे जिनेश्वरदेव को शिव से अधिक दयालु सिद्ध किया है।

शिशुमायण का अजनाचरिते ६ हजार पद्यो का एक वृहद् ग्रथ है। इसमे आचार्य रविषेणविरचित सस्कृत पद्मचरित्र मे वर्णित अजना की कथा का ही विस्तार किया गया है। कवि के वर्णन मे स्वाभाविकता है। कवि का दृष्टिकोण जनसाधारण को परितोष देना ही रहा है और इस कार्य मे कवि शिशुमायण पूरी तरह सफल हुआ है।

बोम्मरस

तेरकणाविनिवासी बोम्मरस सनत्कुमारचरिते और जीवधरसागत्य नामक इन दो ग्र थो के रचयिता हैं। इनका समय लगभग ई० सन् १४८५ है। कवि के पिता का नाम भी बोम्मरस ही था। सम्भवत इनके पिता बोम्मरस भी विद्वान् थे। भामिनि षटपदि के इस सनत्कुमारचरिते मे ८७० पद्य हैं। इसमे हस्तिनापुर के युवराज सनत्कुमार की कथा वर्णित है। कवि का कथानिरूपण सुन्दर है, पद्यो का प्रवाह ठीक है और वर्णन मे नवीनता है। मालूम होता है कि कवि बोम्मरस भोजनप्रिय था क्योकि इनके काव्य में भक्ष्य भोज्य पदार्थों का वर्णन विशेष रूप से मिलता है।

कवि के जीवंधर सांगत्य में करीब १४५० पद्य हैं। इसमें राजपुरी के महाराज सत्यधर के सुपुत्र जीवंधर की कथा निरुपित है। कथा सरल एव

जन-भोग्य है। वर्णन सुंदर है। यद्यपि बोम्मरस को महाकवि नही कहा जा सकता फिर भी वे एक श्रेष्ठ कवि हैं। कवि कोटीश्वर ने भी लगभग ई० सन् १५०० मे, भामिनि षट्पदि मे एक जीवधरचरिते लिखा है, किन्तु वह ग्रंथ अपूर्ण है।

मंगरस (तृतीय)

पहले मगरस खगेन्द्रमणि दर्पण नामक वैद्यक ग्रथ के रचयिता हैं। दूसरे मगरस मगराजनिघटु के रचयिता हैं। तीसरे मगरस जलनृपकाव्य, नेमिजिनेशसगति, श्रीपालचरिते, प्रभजनचरिते, सम्यक्त्वकौमुदि और सूपशास्त्र नामक ग्रथो के रचयिता हैं। चेंगाल्व सचिवकुलोद्भव कल्ल-हल्लिका विजयभूपाल इनके पिता हैं। इनकी माता देविले और गुरु चिक्कप्रभेन्दु हैं। कवि को प्रभुराज, प्रभुकुल और रत्नदीप नामक उपाधियाँ प्राप्त थी। कवि के पिता युद्धवीर मालूम होते हैं क्योकि कवि ने अपने पिता को 'रणकभिनवविजय' कहा है। मगरस तृतीय १६वी शताब्दी के पूर्वार्ध के कवि हैं।

मगरस का जयनृपकाव्य परिवर्धिनी षट्पदि मे, सूपशास्त्र वार्धक-षट्पदि मे, सम्यक्त्वकौमुदि उद्दडषट्पदि मे और शेषतानग्रथ सागत्य में हैं। जयनृपकाव्य में कुरुजागण के राजकुमार जयनृप की कथा है। इसका मूल आधार आचार्य जिनसेनरचित सस्कृत कथा है। कथानायक प्रथम चक्रवर्ती भरत का सेनापति था। यह एक शृगारिक काव्य है। मगरस का पदवध ललित एव स्वभावोक्ति हृदयग्राही है। कवि की कल्पना नवीन एव मनोहारिणी है। परिवर्धिनी षट्पदि मे रचित इस काव्य मे कविता मंगरस की मानो चेरी ही है।

मगरस का सूपशास्त्र ३५६ पद्यों एक पाकशास्त्र ग्रथ है। इसका आधार पिष्टपाक, पानक, कलमान्नपाक, शाकपाक आदि संस्कृत ग्रथ रहे हैं। सभी की चर्चा इस ग्रन्थ मे हुई है। मंगरस कहते हैं कि यह पाकशास्त्र स्त्रियो के लिए अत्यत प्रिय और उपयोगी है। कवि रसनेन्द्रियतुष्टि को ही लौकिक और पारलौकिक सुख मानता है।

सम्यक्त्वकौमुदि ७९२ पद्यो का एक सुदर काव्य है। इसमे वैश्य अर्हद्दास की स्त्रियो द्वारा कथा सुनाने तथा उन्हें सुनकर राजा उदितोदित को सम्यक्त्व एव स्वर्ग प्राप्त होने की कथा वर्णित है। यह कथा पूर्व मे गौतम गणधर ने मगधनरेश श्रेणिक को सुनायी थी। इस कथा मे और भी कई उपकथाएँ

शामिल हैं। ये सब सुदर कथाएँ जनपद कथाओ के वर्ग की है। इन कथाओ मे नीति-उपदेश भरे पडे हुए हैं। सभी कथाएँ पठनीय हैं।

मगरस का प्रभंजनचरिते अपूर्ण है। शेष दो ग्रथ बृहदाकार हैं। इनमे एक है श्रीपालचरिते जिसमे पुण्डरिकिणी नगर के राजा गुणपाल के पुत्र श्रीपाल की कथा वर्णित है। उनके अन्य काव्यो की तरह इसमे भी नवीनता, मनोहरता और स्वाभाविकता है। कवि के अपूर्ण प्रभजनचरिते मे शुम्भदेश के जम्भापुर के राजा देवसेन के पुत्र प्रभंजन की कथा वर्णित है। यह काव्य भी सरल एव सरस है।

नेमिजिनेशसगति मे २२वें तीर्थंकर नेमिनाथ का पुण्यचरित्र निरूपित है। विद्वानो का मत है कि यह रचना कवि की प्रथम कृति है, क्योकि इसकी शैली कवि के अन्य काव्यो की तरह प्रौढ नही है। फिर भी इसमे कवि हृदय मौजूद है और इसके युद्धवर्णन से ज्ञात होता है कि मंगरस क्षत्रिय था और युद्ध मे उसने अवश्य भाग लिया होगा। इसके जयनृपकाव्य, सूपशास्त्र, सम्मक्त्वकौमुदि और नेमिजिनेशसगति प्रकाशित हो चुके हैं।

अभिनववादि-विद्यानद

इन्होने 'काव्यसार' नामक एक सकलन ग्रथ की रचना की है। नगर तालुकान्तर्गत होबुज के एक शिलालेख मे इनकी बडी प्रशसा की गई है। प्रतिवादियो को जीतने मे एवं उपन्यास मे यह अद्वितीय कहा गया है। इसी-लिए वादिविद्यानद नाम से अभिहित किया गया होगा। इनका समय ई० सन् सोलहवी शताब्दी का पूर्वार्द्ध मालूम होता है।

इनके उपर्युक्त सकलन ग्रथ मे ११४० पद्य हैं। सम्भवत इन्होंने अन्य ग्रथो की रचना भी की होगी।

विद्यानद का 'दशमल्यादि महाशास्त्र' नामक एक ग्रथ मुझे उपलब्ध हुआ है। यह ग्रथ प्राकृत, संस्कृत और कन्नड भाषा में लिखित है। इतिहास की दृष्टि से यह ग्रथ महत्त्वपूर्ण है। इसका विस्तृत परिचय मैंने अन्यत्र एक लेख मे दिया है।

साल्व

इन्होंने अपने आश्रयदाता साल्वमल्ल और राजा साल्वदेव की प्रेरणा से भामिनी षट्पदि मे 'भारत' नामक ग्रथ की रचना की है। इस ग्रथ के अति-रिक्त साल्व ने रसरत्नाकर और वैद्यसागत्य नामक और दो ग्रथो की रचना की है। विद्वानो की राय से 'शारदाविलास' नामक एक अन्य कृति भी इन्हीं

की है। कवि के पिता धर्मचन्द्र और गुरु श्रुतकीर्ति हैं। साल्व १६वीं शताब्दी के मध्य या उत्तर भाग मे हुए होगे। साल्व के 'भारत' को नेमीश्वरचरिते भी कहते हैं। अन्य जैन भारतो की तरह यहाँ भी हरिवश-कुरुवश की कथा दी गयी है। यह एक धार्मिक ग्रथ है। कवि साल्व एक विद्वान् कवि हैं। इनका काव्य मध्यम वर्ग का है। कवि का रसरत्नाकर नामक एक अलकार-शास्त्रीय ग्रन्थ भी है। इसमे चार आश्वास हैं। साल्व ने इस कृति की रचना मे अमृतानन्दी, रुद्रभट्ट, हेमचन्द्र, नागवर्म आदि कवियो के ग्रथो से सहायता ली है। इसमे सदेह नही है कि यह ग्रथ विस्तार से लिखा गया है। यह बात कवि ने स्वय कही है। यद्यपि कवि ने सभी नौ रसो का वर्णन किया है। तथापि उसे शृगाररस अधिक प्रिय था।

साल्व के 'शारदाविलास' मे काव्य की जीवस्वरूप ध्वनि ही प्रतिपादित है। कन्नड मे ध्वनि प्रतिपादक ग्रथो मे यह प्रथम रचना है। यह ग्रन्थ अभी तक पूर्ण रूप मे उपलब्ध नहीं हुआ है। इसका केवल दूसरा आश्वास ही मिला है। साल्व का वैद्यसागत्य एक सुन्दर वैद्यग्रथ है। इस प्रकार कवि साल्व अपनी बहुमुखी प्रतिभा से कन्नड भाषासाहित्य की तुष्टि पुष्टि के अवश्य हिस्सेदार हैं।

दोड्डय्य

इन्होंने चन्द्रदेवप्रभचरित की रचना की है इनका निश्चित समय ज्ञात नहीं है। सम्भवत ये १६वी शताब्दी के मध्य भाग मे हुए। इनके ग्रथ का मूल आधार कविपरमेष्ठी और आचार्य गुणभद्र की कृतियाँ हैं। इसमे लगभग ४५०० पद्य हैं। साहित्य का दृष्टि से यह ग्रथ सामान्य स्तर का हैं।

बाहुबलि

ये शृंगेरिवासी वैश्यशिरोमणि सण्णण्ण के पुत्र थे। इनकी माता बोम्मलदेवी थीं। एक दिन राजा भैरवेन्द्र के आस्थान मे भट्टारक ललितकीर्ति ने पुराण श्रवण कराते हुए भैरवेन्द्र को श्रीपचमी की महिमा सुनायी। इस कथा को लिखने के लिए राजा ने बाहुबलि को आदेश दिया। ललितकीर्ति ने भी इसका समर्थन किया। उन दोनो की प्रेरणा से कवि ने नागपञ्चमी की महिमा को प्रकट करनेवाले नागकुमारचरिते की रचना की। बाहुबलि का समय ई० सन् १५६० है। कवि का नागकुमारचरिते एक सुन्दर कृति है। यह ३७०० पद्यो का एक बृहद् काव्यग्रथ है। कवि को कविराजहस और सगीतसुधाब्धिचन्द्रम् नामक उपाधियाँ प्राप्त थी।

गुणचद्र

गुणचद्र एक लाक्षणिक कवि हैं। इनका समय करीब ई० सन् १६५० है। इन्होने छन्दस्सार नामक एक सग्रहरूप छन्दोग्रथ लिखा है। इसमे पाँच

अध्याय हैं। प्रारम्भ के चार अध्यायो में कवि ने प्राय सस्कृत छन्दो के सम्बध मे ही लिखा है। परतु अतिम अध्याय मे अन्य कन्नड ग्रथो मे अनुपलब्ध कन्नड छदो के प्राणभूत छद ध्रुव, भट्ट, त्रिपुट, रूपक, जपक, अष्ट और एक आदिताल प्रतिपादित हैं। इसी प्रकार द्विपदि, त्रिपदि, लावणि आदि के सुन्दर लक्ष्य एव लक्षण भी दिये गये हैं। ग्रथ का अतिम अध्याय वैशिष्टयपूर्ण है। यह लघु-काय छदोग्रथ छदश्शास्त्र के विद्यार्थियो के लिए विशेष उपयोगी है।

लगभग ई० सन् १३वी शताब्दी मे जीवित कवि रट्ट का 'रट्टमत' नामक एक जैन ज्योतिष ग्रथ भी मिलता है। यह ८१८ विविध छदों मे रचित, १२ अध्यायो का एक वृहद् ग्रंथ है। वस्तुत 'रट्ट' कवि की उपाधि है। इनका वास्तविक नाम दूसरा ही होगा। इस कृति मे केवल वर्षा के लक्षण विशेष रूप से प्रतिपादित हैं। वर्षा, फसल आदि कृषि से सम्बद्ध विषय इसमे सुदर ढग से विस्तारपूर्वक वर्णित हैं। कृषको के लिए यह ग्रथ विशेष उपयोगी है। ज्योतिषशास्त्र एव अपने अनुभव के आधार पर कवि ने अपने इस ग्र थ मे कृषको के लाभप्रद अनेक उपयुक्त विषयो की चर्चा की है। इसमे जमीन पर पानी को खोज निकालने, अशुद्ध पानी को शुद्ध करने आदि विषयो का विधान भी निरूपित है।

१६वी शताब्दी के अन्य जैन काव्य लेखको मे 'विजयकुमारिकथे' के रचयिता श्रुतकीर्ति, 'चन्द्रप्रभषटपदि' के रचयिता दोड्डणाक, श्रृंगारप्रधान 'सुकुमारचरिते' के रचयिता पद्मरस और 'वज्रकुमारचरिते' के रचयिता ब्रह्म कवि प्रमुख हैं। ई० सन् १६०० मे देवोत्तम ने 'नानार्थरत्नाकर' नाम से और श्रृगार कवि ने 'कर्णाटकसजीवन' नाम से दो निघटुओ की भी रचना की है। कवि शातरस ने योगशास्त्रविषयक 'योगरत्नाकर' नामक एक सु दर योगशास्त्र भी लिखा है।

सम्भवत १७वी शताब्दी के बाद जैन कवि रचना से सर्वथा विमुख हो गये। सख्या मे ही नही, सारस्वत सम्पदा मे भी यह काल जैनो की अवनति का काल है। इस काल मे जैन कवियो की सख्या केवल २५-३० ही रही। इनमे भी साहित्य की दृष्टि से उल्लेखनीय कवि केवल ५-६ ही हैं। उल्लेखार्ह कतिपय कवियो का परिचय निम्न प्रकार है :

भट्टाकलक

इन्होने 'कर्णाटकशब्दानुशासन' की रचना की है। इनका समय ई० सन् १६०४ है। कवि देवचन्द्र ने इनकी बडी प्रशसा की है। कतिपय शिलालेखो मे भी इनकी बडी प्रशसा की गयी है। इसमे सदेह नही है कि भट्टाकलक सचमुच इस प्रशसा के पात्र हैं। यह प्रसिद्ध वैयाकरण नागवर्म (द्वतीय) और केशि-राज से बढकर हैं। वस्तुत भट्टाकलक महावैयाकरण थे। इन्होने केवल ५९२ सूत्रो मे ही भाषा-विषयक समस्त विषयो को भर दिये हैं। उल्लेखनीय यह है कि भट्टाकलक ने कन्नड व्याकरण को सस्कृत मे लिखा है। इतना ही नहीं,

इन्होने एतदर्थ 'भाषामञ्जरी' नामक सस्कृत वृत्ति एव 'मञ्जरीमकरद' नामक संस्कृत व्याख्या भी लिखी है। कवि ने स्वयं अपने को सस्कृत और कन्नड दोनो भाषाओ के व्याकरणो का मर्मज्ञ बतलाया है। निस्सन्देह भट्टाकलक अपार एव अगाध पाण्डित्य के धनी थे। यह दक्षिण कन्नड जिला के अकलकदेव के शिष्य थे। अत भट्टाकलक वही के निवासी रहे होगे।

धरणि पण्डित

इन्होने 'वराङ्गनृपचरिते' और 'बिज्जलचरिते' की रचना की है। इनका समय लगभग ई० सन् १६५० है। इनके पिता विष्णुवर्धनपुर के पद्मपडित थे। वराङ्गनृपचरिते को सर्वप्रथम जटासिंहनन्दि ने सस्कृत मे रचा ~~गया~~ था। इसी को वधुवर्म ने 'जीवसम्बोधन' मे सग्रहरूप मे दिया था। धरणिपडित ने इस कथा को भामिनि षट्पदि मे विस्तार से लिखा। यह ग्रथ पूर्णरूप मे नही मिला है।

कवि का दूसरा ग्रथ 'बिज्जलरायचरिते' सागत्य छद मे है। इसमे लगभग १२५० पद्य हैं। इसमे बसवण्ण का इतिहास लिखा गया है। बसवण्ण कल्याणपुर के जैन राजा बिज्जल का सेनापति था। इसने बिज्जल को विषपूर्ण आम दिलाकर मरवा डाला। इससे रुष्ट होकर सेना बिज्जल को मारने के लिए प्रस्तुत हुई। यह जानकर बसवण्ण वृषभपुर गया और वहाँ एक कूप मे कूदकर आत्महत्या कर ली। यही ग्रथ का सार है।

नूतननागचद्र और चिदानद

नूतननागचन्द्र ने लगभग ई० सन् १६५० मे 'जिनमुनितनय' की और चिदानद ने लगभग ई० सन् १६८० मे 'मुनिवशाभ्युदय' की रचना की है। जिनमुनितनय नीति और धर्म प्रतिपादक एक लघुकाय कृति है। इसमे केवल १०९ कद पद्य हैं। इनका प्रत्येक पद्य जिनमुनितनय शब्द से पूर्ण होता है। इसीलिए इसका नाम जिनमुनितनय पडा। मुनिवशाभ्युदय सागत्य मे है। इसमे जैन गुरुपरम्परा दी गई है। इसके साथ ही साथ इसमे श्रुतकेवली भद्रबाहु और सम्राट् चन्द्रगुप्त की दक्षिण-यात्रा का विवरण भी दिया गया है।

देवचद्र

इन्होने 'राजावलीकथे' और 'रामकथावतार' नामक दो ग्रथो की रचना की है। इनका समय ई० सन् १७७०-१८४१ है। देवचन्द्र मैसूरनरेश मुम्मडि कृष्णराज के समकालीन थे। राजाश्रित वैद्य सूरि पडित के प्रोत्साहन से ही इन्होने 'राजावलीकथे' की रचना की थी। इसमे जैनधर्म के इतिहास की अनेक बातें तथा राजा एव कवियो की जीवनियाँ दी गयी हैं। इसमे मैसूर के राजाओं की वशावली भी दी गई है। देवचन्द्र का 'रामकथावतार' एक चम्पू ग्रथ है। महाकवि नागचन्द्र (अभिनवपप) से इन्होने केवल कथा एव भावो को ही नही लिया है बल्कि उनके अनेक पद्यो का अनुवाद भी किया है। ग्रथ सामान्य स्तर का है।

ऐतिहासिक ग्रंथों की सूची

ग्रन्थ	ग्रन्थकार	प्रकाशन
कविराजमार्ग	नृपतुग	कर्णाटक सघ आर्ट्‌स ऐण्ड साइंस कालेज, बेंगलूर
विक्रमार्जुन विजय	पप	कन्नड साहित्य परिषद्, बेंगलूर
शांतिपुराण (पुराणचूडामणि)	पोन्न	विश्वविद्यालय, मद्रास
गदायुद्ध (साहसभीमविजय)	रन्न	स० प्रो० ती० नं० मैसूर।
छन्दोम्बुधि	नागवर्म	ललित प्रकाशन, वी० वी० मोहल्ला, मैसूर।
चूडामणि-काव्य	श्रीवर्धदेव	(अनुपलब्ध)
चूडामणि-व्याख्या	तुबुलूर	"
किरातार्जुनीय-व्याख्या (सर्ग १७)	दुर्विनीत	"
चन्द्रप्रभपुराण	श्रीविजय	"
पश्नोत्तररत्नमालिका	नृपतुग	विश्वविद्यालय, मद्रास।
वर्धमानपुराण	असग	(अनुपलब्ध)
हरिवश	गुणवर्म	"
नेमिनाथपुराण	"	"
भुवनैकवीर	"	"
वड्डाराधने उपसर्गकेवलियो की कथा	शिवकोटयाचार्य	शारदामन्दिर, रामय्य रस्ते, मैसूर ४.५।
आदिपुराण	पप	चन्द्रप्रभ प्रेस, वेलगांव।
भुवनैकरामाभ्युदय	पोन्न	(अनुपलब्ध)
शातिपुराण	कमलभव	म० आ० रामानुजय्यगार, सहायक अध्यापक महारानी कालेज, मैसूर।
अजितपुराण	रन्न	जैन साहित्य प्रकाशन सघ, वनुमय्य रस्ते, मैसूर।
त्रिषष्टिलक्षणमहापुराण	चाउण्डराय	पद्मनाभशर्मा, वनुमय्य रस्ते, मैसूर।

जातकतिलक	श्रीधराचार्य	प्राच्य विद्या संशोधालय, मानस गगोत्री, मैसूर।
चन्द्रप्रभचरित (अनुपलब्ध)	"	
तत्वार्थसूत्र-कन्नडवृत्ति	दिवाकरनंदि	" "
सुकुमारचरित	शांतिनाथ	कन्नड सघ, शिवमोग्ग, मैसूर।
मल्लिनाथपुराण	नागचन्द्र	कन्नड अध्ययन न सस्थे, मानस गंगोत्री, मैसूर।
पपरामायण (रामचन्द्रचरितपुराण)	अभिनवपप (नागचन्द्र)	"
कतिहपन समयस्पेगढु	कंति	लोकनाथ शास्त्री, मूडबिद्री।
धर्मामृत	नयसेन	प्राच्य विद्या सशोधनालय, मानस गगोत्री, मैसूर।
व्यवहारगणित	राजादित्य	(अप्रकाशित)
क्षेत्रगणित	"	"
व्यवहाररत्न	"	"
लीलावति	"	"
चित्रहसुगे	"	"
जैनगणितसूत्रटीकोदाहरण	"	"
गोवैद्य	कीर्तिवर्म	"
समय-परीक्षा	ब्रह्मशिव	कन्नड सशोधन सस्थे, धारवार।
त्रैलोक्यचूडामणिस्तोत्र	"	"
नेमिनाथपुराण	कर्णपार्य(कण्णम, कण्णप)	विश्वविद्यालय, मद्रास।
कल्याणकारक	सोमनाथ	प्राच्य सशोधनालय, मानस गगोत्री, मैसूर।
धर्म परीक्षा	वृत्तविलास	
शास्त्रसार समुच्चय	"	
काव्यावलोकन	नागवर्म (द्वितीय)	प्राच्य विद्या सशोधनालय, मानस गगोत्री, मैसूर।
कर्णाटकभाषाभूषण	"	कन्नड साहित्य परिषद्, बेंगलूर।
वस्तुकोश	"	विश्वविद्यालय, मद्रास।
अभिधानरत्नमाला	नागवर्म (द्वितीय)	विश्वविद्यालय, मद्रास।

नेमिनाथ पुराण	नेमिचन्द्र	कर्नाटक विश्वविद्यालय, धारवार।
लीलावति	"	शारदा मन्दिर, रामय्य रस्ते, मैसूर ४ ।
गोम्मटेश्वर-स्तुति	बोप्पण	जी ब्रह्मय्य, श्रवणबेळगोळ ।
निर्वाणलक्ष्मीपतिनक्षत्र	"	सग्रहो मे प्रकाशित है ।
वर्धमानपुराण	आचण्ण	विश्वविद्यालय, मद्रास ।
पार्श्वनाथपुराण	पार्श्वपडित (पार्श्व)	"
शब्दमणिदर्पण	केशिराज	शारदा मन्दिर, रामय्य रस्ते, मैसूर ।
चन्द्रप्रभपुराण	अग्गल	विश्वविद्यालय, मद्रास ।
कावनगेल्ल कब्बिगरकाव मदनविजय	अण्डय्य (आडय्य) (अप्रकाशित)	शारदामन्दिर, रामय्य रस्ते, मैसूर, ४ ४ ।
वर्धमानचरित्र	सकलकीर्ति	(संस्कृत)
वर्धमानपुराण	पद्म	(अप्रकाशित)
हरिवशाभ्युदय	बधुवर्म	"
जीवसबोध	"	च० चं० ब्रह्मसूरय्य, श्रमणबेळगोळ।
यशोधरचरित	जन्न	शारदामन्दिर, रामय्य रस्ते, मैसूर-४ ३, १९६१
अनतनाथपुराण	"	कन्नड अध्ययन सस्थे, मानस गगोत्री, मैसूर ।
पुष्पदतपुराण	गुणवर्म (द्वितीय)	विश्वविद्यालय, मद्रास ।
चन्द्रनाथाष्टक	"	
नेमिनाथपुराण	महाबल	(अप्रकाशित)
सुक्तिसुधार्णव	मल्लिकार्जुन	प्राच्य सशोधनालय, मानस गगोत्री मैसूर ।
चोलपालचरित सुभद्राहरण प्रबोधचन्द्र किरात	केशीराज	(अजैन) अप्रकाशित " " " " "
पुण्याश्रवकथा	नागराज	
धर्मनाथपुराण	बाहुबलि	(अप्रकाशित)
"	मधुर	"

खगेन्द्रमणिदर्पण	मगराज या मगरस	विश्वविद्यालय, मद्रास ।
जीवंधरचरिते	भास्कर	कर्णाटक विश्वविद्यालय, धारवार।
ज्ञानचन्द्राभ्युदय	कल्याणकीर्ति	अतिवल ग्रन्थ माला, बेलगांव ।
कामनकथे	"	अप्रकाशित
अनुप्रेक्षे	"	"
जिनस्तुति	"	"
तत्त्वभेदाष्टक	"	"
भरतेशवैभव	रत्नाकरवर्णी	जी० ब्रह्मप्प, श्रवणबेळगोळ ।
अपराजितेश्वरशतक	"	मैसूर, मूडबिद्री आदि अनेक स्थलों में ।
त्रिलोकशतक	"	"
रत्नाकराधीश्वरशतक	"	"
द्वादशानुप्रेक्षा	विजयण्ण	पद्मराज पंडित, बेंगलूर ।
अंजनाचरिते	शिशुमायण	अप्रकाशित
त्रिपुरदहनसांगत्य	"	"
सनत्कुमारचरिते	बेम्मरस	"
जीवंधरसांगत्य	"	
जयनृपकाव्य	मंगरस (तृतीय)	रामानुज अय्यंगार, मैसूर ।
नेमिजिनेश संगति	"	सं०-प० शांतिराज शास्त्री, मैसूर ।
श्रीपालचरिते	"	अप्रकाशित
प्रभंजनचरिते	"	"
सम्यक्त्वकौमुदि	"	सं०-प० शांतिराज शास्त्री । प्रका० अतिवल ग्रंथमाला, बेलगांव
सूपशास्त्र	"	प्राच्य संशोधनालय, मैसूर । मानसगंगोत्री, मैसूर ।
मंगराजनिघंटु	मंगरस (द्वितीय)	(अप्रकाशित) ।
खगेन्द्रमणिदर्पण (विषवैद्य)	मंगरस (प्रथम)	विश्वविद्यालय मद्रास ।
काव्यसार	अभिनववादि-विद्यानंद	रामानुज अय्यंगार, महारानी कालेज, मैसूर ।

भारत (नेमीश्वरचरिते)	साल्व	
रसरत्नाकर	"	विश्वविद्यालय मद्रास।
वैद्यसागत्य	"	अप्रकाशित।
शारदाविलास	"	
चन्द्रप्रभचरिते	दोड्डय्य	रामानुज अय्यगार, महारानी, कालेज, मैसूर।
नागकुमारचरिते	बाहुबलि	स०-प० शातिराज शास्त्री, मैसूर
छन्दस्सार	गुणचन्द्र	अप्रकाशित।
रट्टमत	कविरट्ट	"
विजयकुमारिकथे	श्रुतिकीर्ति	प्रकाशित (पता अज्ञात)
चन्द्रप्रभषटपदि	दोड्डणाक	अप्रकाशित।
सुकुमारचरिते	पद्मरस	"
वज्रकुमारचरिते	ब्रह्मकवि	"
नानार्थरत्नाकर	देवोत्तमे	"
कर्णाटकसजीवन	शृगारकवि	"
योगरत्नाकर	कविशांतरस	होसगडि विण्णाणि, होसगडि।
कर्णाटकशब्दानुशासन	भट्टाकलक	राजकमल प्रकाशन, बलेपेटे बेंगलूर।
भाषामजरी	"	
मंजरीमकरद	"	
वरागनृपचरिते	धरणिपडित	अप्रकाशित।
बिज्जलचरिते	"	ब्रह्मय्य, होलल्केरे, मैसूर।
जीवसबोधन	बन्धुवर्म	(ऊपर लिखा गया)।
वरागचरिते	जटासिंहनदि	(सस्कृत)
जिनमुनितनय	नूतननागचन्द्र	अनेक स्थलो मे प्रकाशित।
मुनिवशाभ्युदय	चिदानद	अप्रकाशित।
राजावलीकथे	देवचद्र	"
रामकथावतार		

'मानसगगोत्री मैसूर विश्वविद्यालय का नाम है।

तमिल जैन साहित्य

का

इतिहास

१. जैनधर्म और तमिल देश

प्रारम्भ-काल

नाम

भारतीय इतिहास मे जैनधर्म का अपना एक विशिष्ट स्थान है। जैन साधुओ और विद्वानो ने अपने धर्म के प्रचार-प्रसार मे जनता की व्यावहारिक भाषा को माध्यम बनाया। उन्होने आम लोगो को बचपन से ही जैन सस्कार देने का प्रयास किया और एतदर्थ जैन दर्शन तथा साहित्य को भी उनकी मातृ-भाषा मे प्रस्तुत किया। यही कारण था कि जैन विद्वानो ने दक्षिण प्रदेश की तमिल भाषा मे भी अपना साहित्य रचा और तमिल के विकास मे पर्याप्त योगदान दिया।

'जिन' उस पूतात्मा को कहते हैं, जो पूर्णतया जितेन्द्रिय हो और भव परम्परा से विमुक्त हो गया हो। तमिल भाषा मे 'जिन' के द्वारा उपदिष्ट धर्म को 'जैनम्' कहते हैं, तथा उस धर्म के अनुयायियो को 'जैनर्' कहते हैं। जैन साधु को सस्कृत भाषा मे 'श्रमण' तथा प्राकृत भाषा मे 'समण' कहा जाता है। यही शब्द तमिल में आकर 'चमणर्' और 'अमणर' हो गया है। अब तो यह शब्द सामान्य जैन अर्थात् जैन श्रमण एव जैन गृहस्थ दोनो के लिए व्यवहृत होता है। 'जिन' को ही 'अरुकर्' भी कहते हैं जो कि संस्कृत शब्द अर्हत् का तमिल रूप है। इसी आधार पर जैनियो को 'आरुहतर्' (सस्कृत रूप-आर्हत) के नाम से भी पुकारा जाता है। जैन-मत मे राग-द्वेष रूपी ग्रथियो से पूर्णतया छुटकारा पा जाने की अवस्था को केवलदशा या वीतराग दशा कहते हैं, इसीलिए जैनो को 'निर्ग्रन्थ' की सज्ञा मिली, जिसका प्राकृत रूप 'निगठ' है। इसी कारण जैन मत को 'निगठवादम्' भी कहते हैं। 'पिण्डिमरम्' (अशोकवृक्ष) के नीचे अर्हत् भगवान् के विराजने की अनुश्रुति के आधार पर जैनो को 'पिण्डियर्' (अर्थात् अशोकवृक्ष के नीचे विराजनेवाले भगवान् के उपासक) नाम से तमिल ग्रथो मे निर्दिष्ट किया गया है। 'चावकर्' (श्रावक) उन जैनो को कहते हैं, जो गृहस्थ होते हैं।

परम्परा

जैनो की धारणा है कि जैनधर्म अति प्राचीन है। जैन धर्म के अन्तिम चौवीसवें तीर्थंकर ज्ञातपुत्र वर्धमान महावीर हुए थे। उनका निर्वाण ईसवी

पू० ५२७ मे हुआ। जैन ग्रन्थो के अनुसार उनकी आचार्य परपरा निम्न क्रम से है—
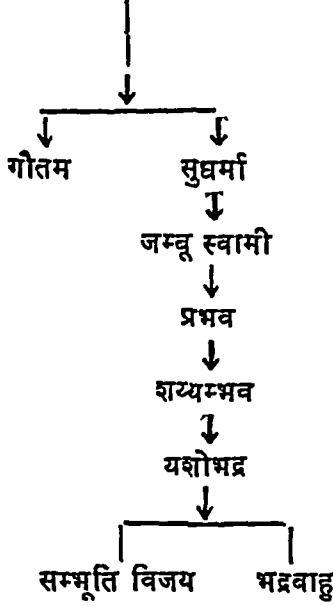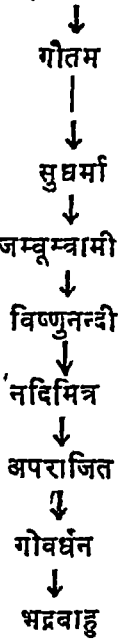
दक्षिण मे प्रवेश

दिगम्बर परंपरा की प्रचलित अनुश्रुति के आधार पर उपर्युक्त आचार्य परम्परा के अन्तिम जैन आचार्य भद्रबाहु ने दक्षिण प्रदेश मे सर्वप्रथम प्रवेश किया था। भद्रबाहु मगधनरेश चन्द्रगुप्त मौर्य के गुरु थे। उस समय उत्तर भारत मे बहुत बडा अकाल पडा। ऐसी विकट दशा मे वहाँ विपुल साधुसघ का भरण-पोषण कठिन हो गया, अत आचार्य भद्रबाहु ने अपने अनेक शिष्यो के साथ मगध छोडकर दक्षिण को प्रस्थान किया और 'श्रवणबेळकुळम्'[1] नामक स्थान पर आकर ठहर गये। भद्रबाहु ने वहाँ से अपने शिष्य विशाख को चोल और पाडिय नरेशो के शासनक्षेत्र तमिलनाडु मे जैनधर्म का प्रचार करने के हेतु भेजा था। इन्ही आचार्य विशाख के सान्निध्य मे चद्रगुप्त मौर्य ने विधिवत् समाधि मरण प्राप्त किया था। उक्त तथ्यो की पुष्टि जैन ग्रथो एव शिलालेखो के आधार पर की जाती है।

१. यह स्थान मैसूर से ६२ मील और चन्नरायपट्टण से करीब अठारह मील की दूरी पर है। कन्नड मे इसका नाम 'श्रमणबेळगोळ' है।

किन्तु कुछ विद्वानो का मत है कि यह सब उल्लेख ईसा की नवी शताब्दी के पूर्व के नही हैं। अत उस दतकथा मे उल्लेखित चन्द्रगुप्त चद्रगुप्त-द्वितीय और भद्रबाहु भद्रबाहु-तृतीय हो सकते हैं। मगर बौद्धधर्म के प्राचीन एव प्रामाणिक ऐतिहासिक ग्रथ 'महावश' मे इस बात का उल्लेख मिलता है कि चद्रगुप्त मौर्य के समय मे सिहलनरेश पाण्डुकाभय ने निगठो (जैनो) की सहायता की थी। इसके अतिरिक्त प्रथम या द्वितीय शती के तथा ब्राह्मीलिपि मे अकित कुछ जैन-शिलालेख दक्षिण तमिलनाडु की गुफाओ में पाये जाते हैं, यद्यपि कुछ लोग इन्हे बौद्ध शिलालेख कहते हैं, किन्तु अधिकाश विद्वान् उन्हे जैन-शिलालेख मानते हैं। अत यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि जैन श्रमणो ने ईसा की दूसरी सदी मे ही तमिलनाडु में आकर, तमिल भाषा द्वारा अपने सम्प्रदाय का प्रसार करना शुरू कर दिया था।

यद्यपि आज तमिलनाडु मे प्राचीन जैन परम्परा लुप्तप्राय हो गयी है, फिर भी एक समय ऐसा था, जब तमिलदेश के कोने-कोने मे जैनधर्म की दुदुभी गूंज उठी थी। जैनो के इस स्वर्णयुग का पता उपलब्ध शिलालेखो और अनेक स्थानो पर भूगर्भ से प्राप्त प्रस्तर मूर्तियो द्वारा स्पष्टतया चलता है। इतना ही नही, अमणप्पाक्कम्, अरुकत्तुरै, नमण समुद्रम्, जिनालयम्, पचपाण्डवमलै, अमणकुडि, शमणर्तिडल्, शमणमलै, अरुकमगलम्, पस्तिपुरम् आदि जैन-सूचक शब्दो से बने स्थलो के नामो से भी जैनधर्म की व्यापकता तथा लोकप्रियता का परिचय मिलता है। कई स्थलो के नाम के अत मे 'पळिक' (जैन-मठ-उपाश्रय) शब्द पाया जाता है।

आदिकाल

जैन-परपरा मे कुदकुदाचार्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह माना जाता है कि ये ई० पूर्व, या ई० सन् की पहली शती मे हुए थे। ये तमिल प्रदेश के निवासी थे। इनके द्वारा रचित ग्रन्थो का दिगबर-परपरा मे विशेष बहुमान है। हिन्दूधर्म मे जो स्थान 'प्रस्थानत्रयी' अर्थात् उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और भगवद्गीता का है, वही स्थान दिगम्बर जैन-परपरा मे कुदकुदाचार्य के 'प्राभृतत्रय' अर्थात् पचास्तिकायसार, प्रवचनसार और समयसार का है। अनुसंधान से पता चलता है कि कुदकुदाचार्य के शिष्य 'बलाक पिच्छ' कहलाते थे। इनके बाद गुणनदी का नाम लिया जाता है। ईसवी दूसरी शती मे आचार्य समन्तभद्र ने कांचीनरेश को वाद मे पराजित किया। फलस्वरूप कांचीनरेश सन्यास ग्रहण कर शिवकोटि आचार्य के नाम से प्रख्यात हुए। यही जैनो का आदिकाल था, जिसका तमिलदेश मे अपना ऐतिहासिक महत्त्व था।

कतिपय शोधकर्ताओ का मत है कि आचार्य अकलकदेव ने काचीनरेश हिमशीतल (ई० ७८८) के दरबार मे बौद्ध भिक्षुओ को शास्त्रार्थ मे हराया था। फिर उन्होने राजा साहसतुंगन् की सभा मे जाकर अपना परिचय दिया। उसका दूसरा नाम 'दतिदुर्गन्' था। वहाँ कुछ समय तक रहने के बाद, आचार्य अकलकदेव तमिलनाडु के तिरुप्पनम्पूर् मे रहने लगे। इनके बाद क्रमशः, सुप्रसिद्ध जैन ग्रन्थ 'हरिवशपुराण' के रचयिता जिनसेन (प्रथम), वीरसेन, जिनसेन (द्वितीय) और इनके शिष्य गुणभद्र तमिलनाडु मे आये। इनमे, आचार्य वीरसेन ने 'जयधवला टीका' नामक ग्रन्थ लिखना प्रारभ किया, लेकिन इसको पूरा किया उनके मनीषी शिष्य आचार्य जिनसेन (द्वितीय) ने। इसी प्रकार आचार्य जिनसेन के महापुराण के अधूरे कार्य को उनके शिष्य गुणभद्र ने ई० ८९८ मे 'उत्तरपुराणम्' नामक ग्रन्थ लिखकर पूरा किया। इनके बाद, तमिल के सुविख्यात पच महाकाव्यो मे तृतीय 'जीवकचिन्तामणि' के रचयिता तिरुत्तक्क देवर्, 'चूळामणि' (जैन महाकाव्य) के कवि तोलामोळि देवर् और गुणभद्र के शिष्य अर्थवली— तीनो उस समय के ख्यातिलब्ध जैनाचार्य थे।

कर्णाटक मे यह दतकथा है कि सुप्रसिद्ध शैवाचार्य तिरुज्ञानसम्बन्धर् के साथ हुई तर्कगोष्ठी मे आचार्य जिनसेन ने भी भाग लिया था। पर यह कथा निराधार प्रतीत होती है, क्योकि तमिल ग्रन्थो मे उस घटना का कोई प्रमाण नही मिलता। तिरुज्ञानसबन्धर् को आचार्य जिनसेन के समकालीन मानने के कोई प्रमाण नही हैं। वास्तव मे जैनधर्म का आदिकाल तिरुज्ञानसम्बन्धर् के समय मे ही (ईसवी सातवी शती) अतिम चरण मे पहुँच चुका था। आचार्य जिनसेन (द्वि०) का समय नवी शताब्दी है।

कलभ्र

कर्णाटक के राज्य शासन को स्थिर करनेवाले जैनों का प्रभाव, 'करनटर' (कन्नड या कर्णट) माने जानेवाले कलभ्रो के शासन के साथ ही तमिलनाडु मे फैला। इसी समय आचार्य वज्रनदी ने मधुरै नगरी मे एक जैनसघ की स्थापना की थी। यह ई० पाँचवी शती की घटना है। आचार्य देवसेन ने ई० ९३३ मे रचित अपने 'दर्शनसार' नामक ग्रन्थ मे लिखा है कि वि० स० ५२६ (ई० ४७०) मे वज्रनदी ने मधुरै मे द्राविड-सघ की स्थापना की। पूज्यपाद ने जिस द्राविड-गण (अतर्विभाग) को देखा, वही वज्रनदी के समय में विशाल सघ बना। सुप्रसिद्ध शैव सत अप्पर् के समय तक तिरुप्पातिरिप्पुलियूर्[1]

१. यह स्थल मद्रास शहर से करीब १२५ मील दक्षिण मे है।

'पाटलिपुरम्' के नाम से प्रसिद्ध जैन केन्द्र था। वहाँ के जैन सघ के प्रमुख आचार्य सर्वनदी ने ई० ४५८ मे 'लोक विभागम्' नामक ग्रन्थ लिखा। उस समय काची मे सिहवर्म का शासन था। इसका उल्लेख सर्वनंदी ने अपने ग्रन्थ मे किया है। यह काल जैन धर्म की दृष्टि से 'उज्ज्वल युग' रहा है।

वज्रनंदी का सघ

कुछ विद्वानो का मत है कि वज्रनदी नवी शती के थे और इस सघ के स्थापक थे आचार्य अर्थबली (Saletore—Mediaeval Jainism, p 233)। अपने मत के प्रमाण मे उन्होने जो शिलालेख उद्धृत किये (E. C II--254 p 109, 110. 258-p. 117), उनसे यही प्रकट होता है कि देवसघ, नदीसघ, सिहसघ और सेनसघ—इन चार विभागो मे बँटकर ही जैनसघ काम करता था। पर, तमिलनाडु के विद्याकेन्द्र मदुरै नगरी मे तमिलभाषी जैनो के प्रभाव से जो 'द्राविडसघ' दिनोदिन प्रगति करता हुआ ख्याति पा रहा था, उसकी चर्चा तक उन शिलालेखो मे नही मिलती। यह द्राविडसघ आदिकाल की महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना थी। आचार्य देवसेन ने अपने ग्रन्थ 'दर्शनसार' मे तो इसका स्पष्ट उल्लेख किया है कि ई० ४७० में वज्रनंदी ने मधुरै में 'द्राविडसघ' की स्थापना की थी। कुछ लोगो की धारणा है कि अर्थबली ने द्राविडसघ का कही उल्लेख नही किया है, अत. वह सघ अर्वाचीन हो सकता है। किंतु यह धारणा गलत है, क्योंकि ऐसा मान लेने पर मानदेवसेन के काल-निर्णय मे बाधा खडी हो सकती है और उनके प्रामाणिक ग्रन्थ की उपेक्षा होगी। शैवसत तिरुज्ञानसम्बन्धर्, सुन्दरर् आदि कवियो के गीतों से यह पता चलता है कि द्राविडसघ मे देव, सेन, वीर; (सिह), नदी आदि नामवाले जैनाचार्य रहते थे। उन विद्वानो के भ्रम का कारण यही है कि जैनसघ 'नदीगण' के अन्तर्विभाग के रूप मे एक द्राविडगण था, जिसका दूसरा नाम 'अरुकलान्वयम्' (उत्तमकलाकेन्द्र) था। किन्तु 'द्राविडसघ' उससे भिन्न था। इसके साथ कई तमिल ग्रन्थो और शिलालेखों में कुन्दकुन्द, समतभद्र आदि आचार्यों का भी जिक्र हुआ है। ई० सातवी शती के समाप्त होते-होते जैनधर्म का आदिकाल लुप्तप्राय हो गया। जैनो द्वारा स्थापित 'द्राविडसघ' भी तमिलनाडु मे विगतप्रभाव हो गया। अतएव कर्णाटक बडा प्रभावशाली जैन केन्द्र बना। तब तमिलनाडु से कई जैनाचार्य श्रवणबेळगोळ की ओर जाने लगे। इस अस्तोन्मुख स्थिति में द्राविडसघ का नाम 'द्राविडगण' पडना सहज सम्भव था। वहाँ के आचार्य पुष्पसेन अपने नाम का निर्देश तमिल-रीति के अनुसार 'पुट्पचेनर्' ही करते थे।

इधर तमिलनाडु मे अर्यवली के शिष्य 'भूतवली' पुष्पदत और तमिल महाकाव्य जीवकचिन्तामणि तथा चूळामणि के रचयिता तिरुत्तक्कदेवर् और तोलामोळि देवर् आदि जैन साधु लोकविश्रुत थे, अतः जैन-धर्म की लोकप्रियता बढने लगी। इसी समय क्षीणकाय जैनसघ का विभाग 'द्राविड-गण' 'द्राविडसघ' के नाम से पुन प्रसिद्ध हुआ। अज्ञात जैनाचार्य द्वारा रचित तमिल के 'यशोधर काव्यम्' का मूल आधार ग्रथ आचार्य पुष्पदन्त की रचना ही माना जाता है। आचार्य पुष्पसेन के शिष्य गुणसेन और कनकसेन दोनों ई० ८९३ मे धर्मपुरी मे थे और यह भी माना जाता है कि वरगुण विक्रमादित्य के शासनकाल मे आचार्य गुणसेन जीवित थे।

तमिलभाषी जैनाचार्य

चोळो के पूर्व

तिरुज्ञान सम्बन्धर् आदि शैव सतो के अथक प्रयास से तमिलनाडु में भले ही जैनधर्म का प्रभाव क्षीण हुआ हो, फिर भी यत्र-तत्र उसका असर दिखाई देता ही रहा। जैनाचार्यों की तमिल साहित्य सेवा धर्म के प्रचार-प्रसार के साथ सुचारु ढग से चल रही थी और 'जीवक-चिन्तामणि' आदि काव्यग्रन्थो का निर्माण हुआ।

इधर, उपलब्ध शिलालेखो से ज्ञात होनेवाले जैनाचार्यो का उल्लेख करेंगे।

'ईसवी तीसरी चौथी शती मे चन्द्रनदी और इळैयभटारर् नामक दो जैन साधुओ ने सलेखना द्वारा देह का त्याग किया।[१] ईसवी आठवी शती के अत मे राजा नदिवोध के समय मे आचार्य नागनदी जीवित थे।[२] पाण्डिय (पाण्ड्य) नरेश मारन् चडैयन के शासन-काल मे तिरुविरुत्तलै नामक स्थान में (दक्षिण पाण्डिय देश) अरुळाळत्तु और अच्चनदी दोनो भट्टारर् (भट्टारक) रहते थे।[३] ये सम्भवत उत्तरवर्ती अरुळाळ प्रान्त से दक्षिणी छोर तक गये होगे। एक ॠग्वेदी से प्रशंसित मलयध्वज नामक जैनमुनि भी उस समय थे।[४]

शॅंतलै-शिलालेखो मे आरम्भवीर और गणसेन भट्टारक का उल्लेख है। अणुओ के समन्वय से जगत् की उत्पत्ति का वर्णन 'आरम्भवाद' कहलाता है।

---

१. M A. R 1904, 288.

२ E I Vol IV, p 136.

३. A R. I. E 1916, p 122

४. पुदुकोट्टै शिलालेख स० ९।

यह सिद्धान्त आर्हत मत मे (जैनधर्म मे) स्वीकृत है। अतः 'आरम्भवीर' का उल्लेख एक जैनाचार्य के रूप में हुआ है।

राजा सोमारन् जटैयन् के काल मे जैनधर्म की प्रभावना करनेवाले भट्टारको के जीवननिर्वाह के लिए की गयी व्यवस्था का पता कळुगुमलै (गृध्र-पर्वत) के शिलालेखो से चलता है।[१] ई० ८९३ के एक शिलालेख से इस प्रकार के धर्मप्रचारक विनयसेन सिद्धान्त भट्टारक तथा उनके शिष्य कनकसेन सिद्धान्त भट्टारक के विषय मे जानकारी मिलती है।[२] इसी प्रकार दूसरे शिलालेख से, राजा आदित्य के समकालीन गुणकीर्ति भट्टारक और उनके शिष्य कनकवीरक्कुरत्तियर् की जानकारी मिलती है।[3]

चोळो के काल मे

पूर्वोक्त दोनो जैनाचार्य चोळ-शासन के काल के थे। चोळाधीश परान्तकन्–१ के समय (ई० ९४५) के एक शिलालेख मे जैनाचार्य विनभासुरगुरु और उनके शिष्य वर्धमान पेरिय अडिगळ् (परमाचार्य) का उल्लेख है।[४] सत्यवाक् नामक गगनरेश ने वळिळगिरि पर एक मदिर का निर्माण कराया। वहाँ कुछ श्रमणो की प्रस्तरमूर्तियाँ हैं। वहाँ के शिलालेखो द्वारा बालचन्दर भट्टारर्, गोवर्धन भट्टारर्, श्री बाणरायर् के गुरु भवनदी (भवणनदी) भट्टारर् और इनके शिष्य देवसेन भट्टारर् आदि की जानकारी मिलती है।[५] पूर्वोक्त आचार्य भवनदी को ही अर्वाचीन तमिल व्याकरण-ग्रन्थ 'नन्नूल' के रचयिता कहा जाता है। किन्तु नन्नूल-लेखक भवनदी राजा चीयगंगन् (सिंह गग) के समकालीन थे और उन्होने उसी नरेश के लिए नन्नूल-ग्रन्थ रचा था। पूर्वोक्त शिलालेख से ऐसा कोई प्रमाण नही मिलता कि वे श्री बाणरायर् के गुरु थे।

मलैय कोयिल् (जैन मदिर) मे आचार्य गुणसेन रहते थे, यह बात पुदुक्कोट्टै शिलालेख–४ मे उल्लिखित है। चित्तण्णवायिल् (पुदुक्कोट्टै के निकटवर्ती जैन गुफामदिर) के प्राचीन शिलालेखो मे 'तोळु कुन्रत्तु कडवुळन् (पूज्य शिखरवर्ती भगवान्-तीर्थंकर या जैनमुनि), नीलन् तिरुप्पूरणन्

---

१ S I I Vol V

२ I M P (Salem) 74

३ S I I Vol III p 92 एव I M P (Arkat) 744

४ I M. P. (North Arkat) 216

५ E I Vol IV p. 140.

(श्रीपूर्ण), तिट्चै चरणन् (दीक्षाचरण ?), तिरुचारत्न्, श्री पूर्णचन्द्रन्, नियत्तक् करन् पट्टक्कालि आदि जैनाचार्यों के नाम दिये हुए हैं।

समणर मलै

मधुरै के 'समणर मलै' (श्रमण गिरि) मे ईसवी दसवीं-ग्यारहवी सदियो के शिलालेख हैं। उनमे निम्नलिखित जैन-नाम मिलते हैं।[1]

१. कुरण्डि अष्ट उपवासी भट्टारकर्
२. इनके शिष्य-गुणसेनदेव
३ इनके शिष्य-कनकवीर पेरियडिगळ्
४. अष्ट उपवासी के दूसरे शिष्य-महानदी पेरियार् (स्वामी)
५. कुरण्डि कनकनदी भट्टारकर् (इन्ही का नाम अभिनन्दन् भट्टारकर् भी है।)
६ गुणसेन देव के शिष्य-वर्धमान पडितर्
७ इनके शिष्य-गुणसेन पेरियडिगळ्
८. गुणसेन देव चट्टन्
९ दैववल देवन्
१०. अन्दलैयान्
११ अरैय काविति संघर्नंदि
१२. श्री अच्चणदी की माता गुणवती
१३ आच्चान् श्रीपालन्, और
१४. कनकनदी।

कळुगु मलै

कळुगु मलै (गृध्र पर्वत) प्राचीन जैन केन्द्र था। उत्तरकालीन शिलालेखो मे जैनो के निम्न नाम मिलते हैं, जैसे—

१ गुणसागर भट्टारर् (इनके शिष्य थे, पेरॅयिवकुंडि शात्तन् देवन्।)
२. तिरुक्कोट्टाट्टु पादमूलत्तान्
३. कन्मन् पुट्पनदी
४ मलै कुळत्तु श्रीवर्धमान पेरुमाणाक्कर् श्रीनदी
५ तिरुक्कोट्टाट्टु उत्तनदी गुरुवडिगळ्
६ उनके शिष्य-शाति सेनप् पॅरियार्
७ तिरु नरु कुन्ड्रम् बलदेव गुरुवडिगळ्

---

१. A R. I E 1908/2, 3-30, 332; 1910'61-68.

८ उनके शिष्य-कनकवीर अडिगळ्
९ पटिच्चमण भट्टारर्
१० उनके शिष्य-भवणदी पेरियार् (भवणनदी स्वामी)
११ तिरु मलैयर् मॉनि (मुनि) भटारर्
१२ उनके शिष्य-दयापालप् पॅरियार्
१३ पुष्पनदी भटारर्
१४ उनके शिष्य-पॅरुनन्द भटारर्
१५ अरिट्टनेमी भटारर् (अरिष्टनेमी भट्टारक) [१]
१६ तिरुक्कोट्टाट्ट विमलाचन्द्र गुरुवडिगळ्
१७ उनके शिष्य—शातिसेन अडिगळ्

कर्णाटक के श्रवणबेळगोळ की तरह, तमिलनाडु के गृध्रगिरि और मदुरै के गिरि जैनधर्म के प्रधान केन्द्र थे।

अन्य स्थल

तिण्डिवनम् के वेलूर मे जयसेन नामक जैनाचार्य थे[२]/ सॉण्डूर् मे वज्र इळम्पॅरुमानडिगळ् रहते थे।[३] तिरुमलै (उत्तर आर्काट जिला) मे आचार्य परवादिमल्ल और इनके शिष्य अरिष्टनेमी आचार्य दोनो रहते थे। इनके साथ सिहलवासी जैनो के नाम भी उपलब्ध होते हैं।[४]

दसवीं शती के एक शिलालेख मे कोयिलूर् (दक्षिण आर्काट जिला) के कुरन्ति गुणवीर भट्टारर् का उल्लेख मिलता है[५]। राजराज चोळन् के समय (ई० ९८५–१०१४) मे गुणवीर महामुनि ने पोळूर् तालुका के तिरुमलै पर एक 'कलिंगु' (बांध का द्वार) की स्थापना की थी।[६]

सुन्दर पाण्डियन् के शासन-काल मे, कनकचन्द्र पण्डित और इनके शिष्य धर्मदेवाचार्य दोनो जीवित थे (पुटुक्कोट्टै शिलालेख सख्या ४७४)। ग्यारहवी शती के चोळनरेश राजेन्द्रन् से समकालीन एव तमिल के सुप्रसिद्ध छन्दग्रन्थ 'याप्पॅरुकलक् कारिकै' और 'याप्परुकल वृत्ति' के रचयिता अमित सागरर् (या अमृतसागरर्) के विषय मे शिलालेख से पर्याप्त जानकारी मिलती

१ S I I Vol V p 121
२ A R I E 1919/12, 41
३ M A R 1934-35 p 83
४ S.I I Vol I p 95-98 & p 104. 105.
५ M A R 1936-37, p 68.
६ S I. I Vol I p 95

है। एक अन्य शिलालेख से ज्ञात होता है कि विजयनगर-शासन-काल में (ई० चौदहवी शती) तिरुप्परुत्ति कुड्रम् मे जैन पुराणग्रन्थ 'मेरुमन्दर पुराणम्' के रचयिता वामन मुनि और उनके शिष्य परवादिमल्ल दोनो विराजमान थे।[1]

उपर्युक्त शिलालेखो मे एक ही नाम बार-बार आया है। सम्भवतया एक व्यक्ति का नाम उनमे दुहराया गया होगा और यह भी सम्भव है कि एक ही नाम के कई साधु भिन्न-भिन्न समय मे हुए हो। इसके समुचित समाधान के लिए ग्रन्थकर्ता जैनचार्यों के नामो का वर्गीकरण एवं शोध अति आवश्यक है। जो हो, इतने मुनियों तथा आचार्यों के नाम और परिचय प्राप्त होने से स्पष्ट है कि जैनधर्म का तमिलनाडु मे पर्याप्त प्रभाव था।

तोलकाप्पियम्

परिचय

तमिल भाषा का प्राचीनतम ग्रंथ है तोलकाप्पियम्। यह एक श्रेष्ठ व्याकरणग्रन्थ ही नही, प्रामाणिक लक्षणग्रन्थ भी है। व्याकरणग्रन्थो मे तो अधिकतर शब्दो की व्युत्पत्ति, निष्पत्ति, निरुक्ति आदि का बाहुल्य होता है, पर आचार्य तोलकाप्पियर् ने, जिनके नाम पर ही प्रस्तुत ग्रन्थ प्रसिद्ध हुआ है, न केवल शब्दो का, किन्तु अक्षरो तक का विशद् विश्लेषण किया है। और विशेषता यह है कि इन्होंने अपने ग्रन्थ मे काव्य, छन्द, अलकार, लक्षण आदि के विशद् वर्णन के साथ ही साथरस, ध्वनि, उक्तिवैचित्र्य, रीति (Convention), वाच्य, अर्थभेद आदि की विशिष्ट तमिल परम्परा का प्रामाणिक परिचय भी दिया है।

तोलकाप्पियर् का मत है कि आतरिक सवेदन काम (तीसरा पुरुषार्थ) और बाह्य आचार धर्म तथा अर्थ काव्य या ग्रथ के प्रधान ध्येय हैं। तोलकाप्पियर् के व्याकरण-सूत्र पाणिनीय अष्टाध्यायी की तरह प्रत्याहार के रूप मे न होकर, ऐन्द्र व्याकरण की तरह अर्थवत् शब्दान्त (वाक्यविन्यस्त) हैं। इसी कारण, प्राचीन कविवरो ने उसकी प्रशसा मे कहा—'ऐन्दिरम् निरैन्द तोलकाप्पियन् (ऐन्द्र व्याकरणज्ञान से पूर्ण पडितवर तोलकाप्पियर्)'

पडिमै (तपश्चर्या)

कुछ विद्वानो का मत है कि तोलकाप्पियर् जैन थे। उनके ग्रन्थ 'तोल काप्पियम्' के 'शिरप्पु पायिरम्' (परिचायक अभिनन्दन-पद्य) मे कविवर पणम्बारनार ने ग्रन्थकर्ता की प्रशसा मे 'पडियोन्' शब्द प्रयुक्त किया है। 'पडिमै' शब्द का अर्थ जैन-परम्परा के मुनियो का पवित्र आचरण या तपस्या

१. A R. I. E. 1923/97 D.

है। जैसे कायक्लेशपूर्वक तपस्या करनेवाले तपस्वियो के लिए साधारणतः 'श्रमण' शब्द का प्रयोग होता हैं, उसी प्रकार 'पडिमैयोन्' या 'पडियोन्' (तपस्वी) शब्द का प्रयोग केवल जैन मुनियो के लिए हुआ है, ऐसी बात नही। सुप्रसिद्ध शैव साहित्य 'तेवारम्' मे, तपश्चर्या और व्रतानुष्ठान के अर्थ मे 'पडिमम्' (पडिमै) शब्द का प्रयोग मिलता है। उस शब्द का दूसरा अर्थ है मूर्ति, विग्रह या शरीर। स्वय तोलकाप्पियर् ने भी उस अर्थ मे 'पडिमै' शब्द का प्रयोग किया है।

अत 'पडिमै' शब्द का अर्थ साधारणत स्वरूप या मूर्ति मानना उचित होगा। आचार्य तोलकाप्पियर् ने ब्राह्मण क्षत्रियादि वर्णवालो के पवित्राचरण के अर्थ मे भी 'पडिमै' शब्द का प्रयोग किया है। उन्ही का यह प्रयोग है,- 'एनोर् पडिमैयम्' (ब्राह्मण-क्षत्रियादि का पवित्राचरण)। सघकालीन कवियो के पद्यसग्रह 'पतिट्रुपत्तु' मे एक हिन्दू राजा का वर्णन है 'निन् पडिमैयान्' अर्थात्, पवित्र आचरणवाला। इसी प्रकार, 'पडिमै' और 'पडियोन्' शब्दों के व्यापक अर्थ के लिए कई प्रमाण अन्य विद्वानो ने भी प्रस्तुत किये हैं। अत. तोलकाप्पियम् के 'शिरप्पु पायिरम्' के रचयिता पणम्बारनार् के 'पडिमैयोन्' शब्द-प्रयोग के आधार पर, आचार्य तोलकाप्पियर् को जैन सिद्ध करना कठिन है।

आररिवुयिर् (छह प्रकार के ज्ञानवाले जीव)

तोलकाप्पियर् को जैन सिद्ध करने के लिए दूसरा तर्क यह दिया जाता है कि उन्होंने जैन सिद्धान्त के अनुसार छह प्रकार के ज्ञान भेद से जीवो का विभाजन किया था।

छह प्रकार के ज्ञानवाले जीवो का विभाजन इस प्रकार है—

१ स्पर्शज्ञानवाले जीव—पेड, पौधे, घास,आदि।

२ दो ज्ञानवाले—स्पर्शज्ञान के साथ जीभ द्वारा रसज्ञान पानेवाले जीव—सीप, कीडा, घोघा आदि।

३ तीन ज्ञानवाले—पूर्वोक्त दोनो ज्ञानो के साथ गधज्ञानवाले जीव—चींटी, दीमक आदि।

४. चार ज्ञानवाले—उन तीनो के साथ रूपज्ञान (देखने की शक्ति) वाले जीव—भ्रमर आदि।

५. पांच ज्ञानवाले—उन चार ज्ञानों के साथ श्रवणज्ञानवाले जीव—छोटे-वडे पशु-पक्षी।

६ छह ज्ञानवाले—उन पाँचो ज्ञानो के अलावा, चितन और अभिव्यजना की शक्तिवाले 'पकुत्तरिवु' (विवेचनज्ञान) होने से, मनुष्य 'आररिवुयिर्' (छह ज्ञानवाले) होते हैं।

आचार्य तोलकाप्पियर् का यह विभाजन जैन सिद्धान्त के अनुसार बन पडा है। इसीलिए उन्हे जैन सिद्ध करनेवाला तर्क पेश किया जाता है। किंतु, जैन सिद्धात के अनुसार, पाँच ज्ञानवाले जीवों की श्रेणी मे ही मनुष्य, जानवर आदि आ जाते है फिर भी सवेदन तथा विवेचन का ज्ञान मनुष्य की भाँति जानवरो को नही है। तोलकाप्पियर् ने अपने विभाजन मे 'आररिवुयिर्' नामक छठाँ भेद करके मानो जैन पद्धति को विशद् किया है।

तमिल मे जीवो के विभाजन की अपनी विशिष्ट रीति है। वस्तुओ के दो विभाग हैं—१ उयर् तिणै (ऊँचा कुल) और २ अह्रिणै (उससे भिन्न कुल)। छह प्रकार के ज्ञानवाले मनुष्य आदि 'ऊँचे कुल' मे गिने जाते हैं और छह से कम ज्ञानवाले मनुष्यो तथा अन्य जीवो को 'उससे भिन्न (निम्न) कुल' मे गिना जाता है। इस आधारभूत सिद्धान्त का ही आचार्य तोलकाप्पियर् ने अपने ग्रन्थ मे समर्थन किया है। इस अध्याय का नाम उन्होंने 'मरपियल्' (रीतिप्रकरण) रखा है। अत यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि तोलकाप्पियर् ने तमिल की विशिष्ट रीति का उल्लेख किया, न कि अपने या किसी के सिद्धान्त का समर्थन किया। यहाँ सिद्धान्त-समर्थन या मत-प्रचार की कोई नौबत ही नही आयी, वह भी, एक प्रामाणिक व्याकरण-रीति-ग्रन्थ मे साम्प्रदायिक सिद्धान्त का समावेश, जहाँ तक तोलकाप्पियर् की बात है, कदापि सम्भव नही लगता। उनका उद्देश्य तो तमिल की रीति-नीति का प्रामाणिक परिचय देना था। उन्होने इन्द्र, वरुण आदि देवताओ का भी उल्लेख किया। अत यह कहना क्या उचित होगा कि तोलकाप्पियर् वैदिक मत के अनुयायी थे? अन्ततोगत्वा, हमे इस निर्णय पर पहुँचने मे कोई आपत्ति नही कि तोलकाप्पियर् ने निर्लिप्त तथा तटस्थ भाव से तत्कालीन रीति-नीति का प्रामाणिक परिचय दिया, और यह भी सम्भव है कि उनको जैन धर्म की जानकारी थी, तथा उनके समय मे जैन धर्म तमिलनाडु में फैल चुका था।

तोलकाप्पियर् के 'आररिवुयिर्' (षड्ज्ञानी जीव) का विभाजन ग्रहण कर, उनको 'वैदिक धर्मानुयायी' माननेवाले भी कम नहीं हैं। उनकी दलील है—'जैन विद्वान् जीवो को पाँच ज्ञानभेदो के आधार पर पाँच विभागो मे